सिद्ध योग

संस्थापक, सम्पादक तथा संरक्षक
योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्र मोहन जी महाराज

वर्ष ३
वार्षिक मूल्य १६ रूपया
अंक ६
सितम्बर १९७०
इस अंक का मूल्य १ रु०

अभिलाषा

मानुष हौं तौ वही रसखानि, बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पसु हौं तौ कहा बसु मेरी, चरौं नित नंद की धेनु मँझारन॥
पाहन हौं तौ वही गिरि को, जो धर्यौ कर छत्र पुरंदर धारन।
जो खग हौं, तौ बसेरौ करौं, मिलि कालिंदी कूल कदंबकी डारन॥

या लकुटी अरु कामरिया पर, राज तिहूं पुर को तजि डारौं।
आठहूं सिद्धि नवौ निधि कौ सुख, नंद की गाइ चराइ बिसारौं॥
आँखिन सौं 'रसखानि' कबौं, ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिक हू कलधौत के धाम, करील की कुंजन ऊपर वारौं॥

—रसखान

श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन, सवाई ऐत्मादपुर आगरा

सिद्ध गुफा प्रकाशन
सवाई एत्मादपुर
आगरा

संयुक्त सम्पादक
श्री 'दिव्य'

इस अङ्क में—

लेख	लेखक	पृष्ठ
१. विरक्त मुनि ही सुखी है	…………	१
२. वैराग्य (हमारा विशेष लेख)	योगयोगेश्वर पूज्यपाद अनन्त श्री चन्द्रमोहनजी महाराज	२
३. सत्यं शिवं सुन्दरम्	श्री वनवासी	८
४. आया हूं मैं द्वार तुम्हारे	श्री चन्द्रप्रतापसिंह रावत मढ़िवाना	६
५. सम्प्रज्ञात समाधि और उनके विशेष अनुभव	श्री दुर्गासिंह जी तोमर एम. ए., एल० एल-बी० सहायक आयुक्त आबकारी	१०
६. गुरु-कृपा का एक ज्वलन्त उदाहरण	श्री विजयसिंह जी एम. ए., रिसर्च स्कालर वाराणसी	१४
७. योग-मार्ग की अधिकारिणी नारी	श्रीमती सरिता भारद्वाज एम.ए., बी एड.	२१
८. ईश-वन्दना	श्री 'दिव्य' जी	२५
६. भर्तृहरि महाराज को वैराग्य प्राप्ति	श्री विष्णुदत्त शर्मा एम.एस-सी., एम.टी.एस. (जापान)	२३
१०. कुछ प्रश्न और उनके उत्तर	पूज्यपाद श्री गुरुदेवजी के सौजन्य से	३०
११. मुक्ति का स्वरूप	श्री सूर्यप्रसाद जी उपाध्याय	३२
१२. आत्म-विकास और योग	श्री सोमदत्त शर्मा बी. ए., बी-एड. सालवन (करनाल)	३७
१३. योगेश्वर-चरित्र माला (सिद्धियों का दुरुपयोग करनेवालों को मार्ग दर्शन)		४०
१४. सद्गुरु-महिमा	कु० ववनी रानी	४२
१५. वैर के बीज	आचार्य यशोवर्धन	४३
१६. सचित्र योगासन और उनसे लाभ		४५

ॐ

सिद्ध योग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक पत्र

वर्ष ३ | अङ्क ६ | सितम्बर १९७०

"ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्'
मर्त्यो मृत्योर्मुख विवरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः ।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुविशदयन् योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये 'सिद्धयोगः' ॥

विरक्त मुनि ही सुखी है।

असारः खलु संसारो दुःखरूपी विमोहकः ।
सुतः कस्य धनंकस्य स्नेहवाञ्ज्वलतेऽनिशम् ॥
न चेन्द्रस्य सुखं किंचिन्न सुखं चक्रवर्तिनः ।
सुखमस्ति विरक्तस्य मुनेरेएकान्त जीविनः ॥

अर्थात—यह असार संसार है। यह अत्यन्त दुःखरूप और मोह में डालनेवाला है। पुत्र किसका? धन किसका? स्नेहवान् पुरुष रात-दिन दीपक के समान जलता रहता है। इन्द्र को और चक्रवर्ती राजा को कुछ भी सुख नहीं है। सुख है तो केवल विरक्त, एकान्त जीवी मुनि को ही है।

—श्रीमद्भागवत (माहात्म्य)

वैराग्य

हमारा विशेष लेख :—

[योगयोगेश्वर पूज्यपाद अनन्त श्री चन्द्रमोहनजी महाराज]

हमारे शास्त्रों में मन की एकाग्रता के लिये दो प्रमुख साधनों का वर्णन किया गया है। उनका नाम है। १-अभ्यास और २-वैराग्य। मन को एकाग्र करने के लिये अभ्यास किये जानेवाले साधनों का बहुत बड़ा वर्णन हमारे शास्त्रों में मिलता है। उनमें श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदि वेदान्त की साधनायें और यम, नियम, आसन, प्राणायाम आदि योग से सम्बन्ध रखने वाली साधनायें मन की एकाग्रता के लिए ही है। साधनाओं में किसी प्रकार का अन्तर नहीं पड़ता, चाहे हम महा वाक्यों का मनन करते हुए श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदि का अभ्यास करें चाहे समाधि प्राप्ति का लक्ष्य बनाकर यम, नियम, आसन आदि के पालने में तत्पर होकर लगें। यह सब अभ्यास ही कहलाता है। अभ्यास एक इस प्रकारका साधन है, जिसको हर स्थिति का मनुष्य पालन करता हुआ अपने उच्चतम लक्ष्य को शनैः-शनैः प्राप्त कर सकता है। किन्तु उन सब में वैराग्य को मोक्ष का नात्तरियत माना गया है। जो मनुष्य—प्राक्तन कर्म—विपाक पुण्य के प्रभाव से विषयों से वितृष्ण हो जाता है उसको किसी भी साधना की आवश्यकता नहीं पड़ती। क्योंकि इन्द्रियों के विषयों में वितृष्ण होना ही वैराग्य कहलाता है। इन्द्रियों का अपने-अपने विषयोंसे विगतराग हो जाना ही वैराग्य का भाव है। संसार की सभी वस्तुएँ भयान्वित हैं। किन्तु एकमात्र वैराग्यवान व्यक्ति भयरहित हो करके निर्द्वन्द्व होता है। श्री भर्तृहरि जी महाराजने अपने वैराग्यशतक में बिल्कुल स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया है कि:—

भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद्भयम्।
मौने दैन्य भयं बले रिपुभयं रूपे जरायां भयम्॥
शास्त्रे वादभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद्भयम्।
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्य मेवाऽभयम्॥

अर्थात् 'भोगे रोग भयम्' जो मनुष्य भोगों को भोगता चला जाता है वह अवश्य ही रोगी बन जाता है। भोग भोगने की इच्छा तो

प्रबल रहती है उस इच्छा को भोग करके ही मनुष्य क्षण मात्र के लिये हटा सकता है पर थोड़ी देर के बाद वही वासना और भी दुगुना चौगुना रूप धारण करके सामने आने लगती है। क्योंकि शास्त्रीय सिद्धान्त है :—

न जातु कामः कामानामुप भोगेन शाम्यति हविषा। कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते।

अर्थात् पैदा हुई कामनायें कभी उनके भोग से शान्त नहीं होतीं, प्रत्युत अग्नि में घी डालने पर जिस प्रकार अग्नि उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है उसी प्रकार कामनाओं का उपभोग करने से कामनायें भी उत्तरोत्तर बढ़ती चली जाती हैं। इसलिये भोग भोगने से इन्द्रिय लौल्य उत्तरोत्तर बढ़ता ही है। इस चपलता का मनुष्य या तो भोग के अनभ्यास से ही ठीक कर सकता है अन्यथा विगतराग होकर के ठीक कर सकता है। उपर्युक्त श्लोक में श्री भर्तृहरि जी महाराज ने 'भोगे रोग भयं' कह करके भोग का अन्तिम परिणाम दिखला दिया। भोग भोगने से इन्द्रियों की चपलता दिन प्रति दिन बढ़ती है। जितनी चपलता बढ़ेगी उतना ही मनुष्य भोग का भोक्ता बन जायगा। जितना वह भोक्ता बनेगा उतना ही उसके शरीर से शक्ति का दिन प्रति दिन क्षय होता चला जायगा। ज्यों-ज्यों शक्ति कम होगी त्यों-त्यों शरीर में रोग बढ़ते चले जायेंगे और भोगे रोग भयं का परिणाम सामने आता चला जायेगा। यदि हम ईश्वर की परमानुकम्पा से इन्द्रियों में वीतराग है तो हमारे मन में भोग इच्छा ही नहीं बनेगी। भोगेच्छा मन में न बनने पर भोग प्रवृत्ति स्वतः ही बन्द हो जायेगी। इसलिये यह बिल्कुल सत्य और यथार्थ कहा गया है कि भोगे रोग भयं पश्चात् कुले च्युति भयं। एक व्यक्ति का कुल शीलवान् है, उसके कुल में उसके पूर्वज लोग ऊँचे ऊँचे आदर्शों को लेकर पैदा होते रहे हैं। उनकी संस्कृति और शिक्षा बड़ी उच्च भावों की चलती रही है। कदाचित् कोई भ्रष्टात्मा जन्म ले ले और अपने रास्ते से भ्रष्ट हो जाय तो वह कुल-कलंक कहलाता है। इसलिये 'कुले च्युति भयं' का यथार्थ प्रयोग है। तत्पश्चात् वित्ते नृपालाद्भय घर में यदि किसी प्रकार की सम्पत्ति इकट्ठी हो उसमें शासकों का भय बना रहता है। आज कल संसार में देखने में आता है जहाँ पर किसी प्रकार भी बड़ी आय अथवा घर में सम्पत्ति दिखलाई देती है तो सरकार सम्पत्ति-कर लगाकर धन अधिक मात्रा में लेलेती है। मनुष्य यदि मौन रहता है तो दीनता का भय बना रहता है। सुन्दर रूप है तो बुढ़ापे का का भय बना रहता है। शास्त्रों का ज्ञाता है तो प्रति पक्षियोंका भय बना रहता है। शरीर है तो काल का भय रहता ही है। सभी वस्तुएं भयान्वित हैं। केवल मात्र वही मनुष्य निर्भय है जो इन सबके राग से परे निकल गया है, विरक्त हो गया है। इसलिये यह सब भर्तृहरि जी ने यथार्थ ही कहा है:—

सर्वं वस्तु भयान्वितं
भुवि नृणां वैराग्य मेवाऽभयम्।

इन्हीं सब कारणों से वैराग्य को मोक्ष

का मान्तरियत माना है । योग दर्शन में भगवान पतंजलि देव जी ने पर और अपर वैराग्य को दो विभागों में बाँट दिया है। जो मनुष्य अपनी वासनाओं पर नियंत्रण करके अपने आपको संयमित रखने की चेष्टा करता है वह वशीकार संज्ञा वैराग्य का अधिकारी है। वशीकार संज्ञा वैराग्य का लक्षण योग दर्शन में भगवान् पतंजलि देव जी ने इस प्रकार बतलाया है :—

दृष्टानुश्रविक विषय वितृष्णस्य वशीकार संज्ञा वैराग्यम् ॥

अर्थात् देखे और सुने हुए विषयों पर वशीकार होना वशीकार संज्ञा वैराग्य कहलाता है। इस सूत्र पर भाष्य करते हुये भगवान व्यासदेव जी ने लिखा है :—

स्त्रियोऽन्नपानमैश्वर्य्यमिति दृष्ट विषय वितृष्णस्य स्वर्ग वैदेह्य प्रकृतिलयत्व प्राप्तावानुश्रविक विषये वितृष्णस्य दिव्यादिव्य विषय सम्प्रयोगेऽपि चित्तस्य विषयदोषदर्शिनः प्रसङ्ख्यानबलदना भोगात्मिका हेयोपादेय शून्या वशीकार संज्ञा वैराग्यम् ॥

अर्थात् रूपरस गंध स्त्री अन्न पान आदि दृष्ट विषय और स्वर्ग वैदेह्य प्रकृतिलयादि अदृष्ट विषय चाहे कितने ही दिव्यादिव्य विषय हों प्रसंख्यान बल से विषय दोषदर्शी चित्त हेयोपादेय शून्यावना भोगात्मिका स्थिति ही वशीकार संज्ञा वैराग्य वाली हुआ करती है। इस बात को यों समझ लेना चाहिये। विषय दो प्रकार के होते हैं :—

(१) दृष्ट विषय।

(२) आनुश्रविक विषय।

दृष्ट विषय वे हैं जो इस लोक में रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श स्त्री, अन्नपान, ऐश्वर्य इत्यादि इन विषयों को मनुष्य सामान्य रूप से प्राप्त करता ही है।

अर्थात् मनुष्य लोक में जन्म लेने वाले हर प्राणी के लिये अपने-अपने पुण्य कर्म विपाक के अनुसार साधारण रूप से यह सभी को उपलब्ध होते हैं। इसके अतिरिक्त आनुश्रविक विषय हैं जिनको हम शास्त्रोंसे जानते और सुनते हैं उनमें भी दो प्रकार हैं :—

एक वह है जिसको हम शरीरान्तर वेद्य कह सकते हैं, अर्थात जब हमारा कोई शरीर देवलोकादि में बनेगा तभी उन विषयों का ज्ञान हमें हो सकेगा। जैसे जो स्वर्गादि प्राप्त करते हैं या विदेह और प्रकृतिलीन योगियों को प्राप्त होते हैं। इन विषयों को शरीरान्तर वेद्य कहा है और इसके अतिरिक्त दिव्य गन्ध, दिव्य रस, दिव्य रूप, दिव्य स्पर्श एवं दिव्य शब्दों का अनुभव होना ये रूप विषय अवस्थान्तर वेद्य कहलाते हैं। इसी प्रकार से योग दर्शन के विभूतिपाद में कही हुई सभी सिद्धियाँ, जैसे—'बलेषु हस्ति बलादीनि' आदि सब विषय अवस्थान्तर वेद्य हैं। इन दोनों प्रकार के दिव्य-अदिव्य विषयों की उपस्थिति में जब चित्त ज्ञान के बल से इनमें दोष देखता है, दोष देख करके इनको ग्रहण नहीं करता और न परे हटाने का ही प्रयत्न करता है।

क्योंकि उस योगी के चित्त में इसके प्रति न राग है और न द्वेष है। राग हो तो ग्रहण करने की कोशिश करें और द्वेष हो तो इसे परे हटाने की कोशिश करें। ऐसी स्थिति में जो हेयोपदेय शून्य स्थिति है उसी को वशीकार संज्ञा वैराग्य कहते हैं। वस्तुतः—

विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः।

अर्थात् जिनके चित्त विकार के हेतु स्त्री, अन्न-पान आदि के उपस्थित होने पर भी विकृत नहीं होते वही पुरुष धीर है। इस प्रकार उनका चित्त एकरस बना रहता है। चित्त की इसी प्रकार की स्थिति ही वशीकार संज्ञा कहलाती है। हमारे शास्त्रों में इस वशीकार वैराग्य को अपर वैराग्य माना है। पर वैराग्य इससे भी ऊंचा है। जिसका वर्णन आगे के निबन्ध में किया जायेगा। विषयों में राग का न होना ही वैराग्य का कारण नहीं है। क्योंकि कभी-कभी ऐसा भी देखने में आता है कि जो लोग तीव्र रोग आदि से पीड़ित हो जाते हैं उनका भी विषयों में राग नहीं रहता और विषयों से अरुचि हो जाती है। इसका नाम वैराग्य नहीं है और न ऐसे वैराग्य से योग सिद्ध होता है। कदाचित् किसी व्यक्ति को विषय उपलब्ध ही न हों और वह कह दे नहीं जी हम तो विरक्त हैं तो उनकी विरक्तता कोई महत्त्व नहीं रखती, क्योंकि उनको वह वस्तु उपलब्ध ही नहीं या वस्तु उपलब्ध होने पर जिनकी इन्द्रिय शक्ति क्षीण हो चुकी है, ऐसी स्थिति में कोई कहे कि हम विरक्त हैं तो यह भी उनका कहना गलत है क्योंकि उनके अन्दर विषय-भोग की सामर्थ्य नहीं है तो वे भोग क्या भोग पायेंगे। वस्तुतः तो देखे और सुने हुये विषयों में राग का प्रसंख्यान बल से उत्पन्न ही न होना वशीकार संज्ञा वैराग्य है। हमारे शास्त्रकारों ने इस ऊपर वैराग्य को अलग अलग चार विभागों में बांट दिया है। जैसेः-

१—यतमान संज्ञा वैराग्य।

२—व्यतिरेक संज्ञा वैराग्य।

३—एकेन्द्रिय संज्ञा वैराग्य।

४—वशीकार संज्ञा वैराग्य।

इन चारों को इस प्रकार समझ लेना चाहिये। जैसे—

१— इन्द्रियों के विषय अपने अपने रागों में मनुष्य को प्रवृत्त करते हैं। ज्यों ही वास्तविक भोग सामने उपस्थित हुए योगी उससे बचने की चेष्टा करता है। अपने चित्त पर नियन्त्रण करता है। इसका नाम यतमान संज्ञा वैराग्य है।

२— ऐसा प्रयत्न करने पर जब योगी यह देखता है कि मैंने अमुक-अमुक विषयों पर अधिकार प्राप्त कर लिया है और इन-इन विषयों को प्राप्त करना शेष है ऐसे वैराग्य को व्यतिरेक संज्ञा वैराग्य कहते हैं।

३— कदाचित् अभ्यास-बल से या अन्तरानुभूति के बल से जब-जब राग-द्वेष आदि इन्द्रियों को बाह्य विषयों में प्रवृत्त करने में तो असमर्थ हो जाते हैं किन्तु मन में सूक्ष्म रूप से टिके रहते हैं। इस प्रकार की संज्ञा

का जो योगी है किसी विषम अवसर पर दिव्य विषय ज्यों ही उसे प्राप्त होते हैं तो उसका मन क्षुभित हो सकता है। ऐसे वैराग्य को एकेन्द्रिय संज्ञा वैराग्य कहा गया है।

४— इससे भी उत्तम राग की सूक्ष्म रूप से निवृत्ति हो जाती है। और दिव्यादिव्य विषय उपस्थित होने पर भी बराबर उपेक्षा वृत्ति बनी रहती है। यह वैराग्य की तीनों श्रेणियों से उत्कृष्ट है। पहली तीन अवस्थाओं का वैराग्य निरोध का कारण नहीं बनता। निरोध का कारण चतुर्थ भूमि वाला वशीकार संज्ञक वैराग्य ही है। इसलिये इस वैराग्य का निरोध के साधनों में वर्णन किया गया है। किन्तु यह अवस्था योगी को वैराग्य की पहली तीन भूमियों को लांघ करके ही प्राप्त होती है। सहसा प्राप्त नहीं होती। ज्यों-ज्यों मनुष्य का अपर वैराग्य सिद्ध-स्थिति में आता है त्यों-त्यों मनुष्य पर वैराग्य की ओर अपना कदम बढ़ाता चला जाता है। पर वैराग्य में ही मनुष्य की रस प्रवृत्ति पूर्णरूपेण हट पाती है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता के दूसरे अध्याय में कहा है:—

विषया विनिवर्तन्ते
निराहारस्य देहिनः।
रस वर्जं रसोऽप्यस्य
परं दृष्ट्वा निवर्तते॥

अर्थात् निराहार व्यक्ति जब अपने रसादि विषयों से दूर रहता है तो उसकी वासनायें मन से हट जाती हैं। किन्तु रस की भावना नष्ट नहीं होती। उसकी रस की भावना पर दर्शन के बाद ही हट पाती है। जब मनुष्य को पर-दर्शन होता है तो उसकी चित्त वृत्तियाँ निरुद्ध हो जाती हैं। एक प्रकार से वह अपनी स्वरूप-स्थिति को प्राप्त कर लेता है। और अपने स्वरूप का द्रष्टा बन जाता है। निरोध स्थिति ही योगी की स्वरूप स्थिति है जिसके लिये योग-दर्शन मुँह खोलकर कहता है:—

"तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्॥"

अर्थात् –

तदा तस्मिन स्थितं द्रष्टुः जीवात्मनः स्वरूपेऽवस्थानम् तदानीम् स्वरूप प्रतिष्ठा तावत कीदृशी यथा चित्ति-शक्तिर्भवति कैवल्ये।

अर्थात् जैसे चेतन शक्ति केवली भाव को प्राप्त होने पर हुआ करती है उस समय आत्मा बुद्धि बोध को छोड़कर के अपने स्वरूप में ठहर जाता है इसी को स्वरूपप्रतिष्ठा कहा गया है। एवं इसी को श्री पतञ्जलिदेव ने पर वैराग्य के रूप में वर्णित किया है यथा:—

'तत्परं पुरुषख्यातेगु णवैतृष्ण्यम्।'

इस सूत्र पर भाष्य करते हुए भगवान व्यासदेव जी महाराज इस प्रकार पंक्तियाँ लिखते हैं:—

दृष्टानुश्रविक विषय दोषदर्शी विरक्तः पुरुष दर्शनाभ्यासात्चित्तशुद्धि प्रविवेकाप्यायित बुद्धि-गुणेभ्यो व्यक्ताव्यक्त धर्मकेभ्यो विरक्त इति तद्द्वयं वैराग्यं तत्र

यदुक्तं तद्ज्ञान प्रसादो मात्रं यस्योदये सत्त्वियोगी प्रत्युदित ख्यातिरेवं मन्यते प्राप्तं प्रापणीयं क्षीणा क्षेतव्याः क्लेशाः छिन्नः श्लिष्टपर्वा भवसंक्रमो यस्याविच्छेदात् जनित्वा म्रियते मृत्वा च जायत इति ज्ञानस्यैव पराकाष्ठा वैराग्यम् एतस्यैव हि नान्तरीयकं कैवल्यमिति ॥

बुद्धि-बोध आत्मा पुरुष ज्यों-ज्यों प्रसंख्यान की ओर चलता है त्यों-त्यों उसका बुद्धि-विवेक और निर्मल होता चला जाता है और धीरे-धीरे पुरुष-दर्शन के अभ्यास से अपने स्वरूप में अवस्थित होकर वह जिज्ञासु व्यक्ताव्यक्त कर्म वाले गुणों से भी विरक्त हो जाया करता है। इस प्रकार से वैराग्य दो प्रकार का माना गया है। अपर वैराग्य का वर्णन पहले कर दिया गया है। जिसमें मनुष्य दृष्टानुश्रविक विषयों में दासो बन जाता है उस वैराग्य का नाम वशीकार संज्ञा है। किन्तु ज्यों-ज्यों साधक अपने अभ्यास को उत्तरोत्तर बढ़ाता चला जाता है और उसकी विवेक-ख्याति प्रबल होकर निर्मल होती चली जाती है तो उसका मन व्यक्ताव्यक्त गुणों से विरक्त हो जाया करता है उसी वैराग्य को पर वैराग्य कहा गया है। यह वैराग्य पुरुष ख्याति मात्र है। और सर्वोत्कृष्ट है। इस वैराग्य के पैदा हो जाने पर प्रत्यख्याति योगी इस प्रकार मानता है- 'प्राप्तं प्राप्नियम' जो कुछ मुझे पाना था पा लिया। क्षीणा: क्षीतव्याः क्लेशाः नष्ट करने लायक क्लेश मैंने नष्ट कर दिये हैं छिन्नः क्लिष्ट भव सक्रमः श्रृङ्खला से जुड़ा हुआ भव संसार चक्र मैंने नष्ट कर दिया है जिसके नष्ट होने पर बार-बार जमना और मरना पड़ता था। इसी वैराग्य को मोक्ष का नाम तरीयक माना गया है।

अर्थात् यह वैराग्य मोक्ष ही है इस स्थिति के अन्दर को प्राप्त हुआ योगी केवल मात्र बुद्धि बोध की अस्मि वृत्ति से ही अवशेष रहता है। ऐसे योगी की वृत्ति निर्माणोमुखी रहती है। इसी को ऋतम्भरा प्रज्ञा कहते हैं।

ऋतं सत्यं बिभर्ति या सा ऋतम्भराः।

यह वृत्ति सत्य को धारण करती है। योगी अपने पूर्ण तेज के साथ अस्मि अस्मि अहमेवा अस्मि। यह सब कुछ मैं ही हूं ऐसा अनुभव करता है। यहीं पर वैराग्य का अन्तिम परिणाम है। योगाभ्यास करने वाले साधक को ज्यों-ज्यों अन्तर्मुखता प्राप्त होती है त्यों-त्यों वह वशीकार सज्ञा वैराग्य को प्राप्त होता चला जाता है। और ज्यों-ज्यों विवेक ख्याति की ओर आगे बढ़ता है त्यों-त्यों वह पर वैराग्य को प्राप्त हो जाता है और संसार के जन्म मरण के चक्र से छूट कर आत्मा अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है इसी का नाम कैवल्य है। पुरुष का बुद्धि बोध को छोड़कर अपने स्वरूप में स्थित होना ही केवली भाव है। इसलिये योग के जिज्ञासु साधक को चाहिये कि वह अष्टांग योग के नियमों का पालन करता हुआ अपने आपको पूर्ण विवेकवान् बना दे जिससे परम शान्ति लाभ हो।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्‌ दुःख भाग्भवेत् ॥

सत्यं-शिवं-सुन्दरम्

[श्री वनवासी]

इन्द्रप्रस्थ में महाराज युधिष्ठिरके विशाल राजसूय यज्ञकी तय्यारियाँ आरम्भ हो गई थीं। सामन्तों, मण्डलीक राजाओं और मुख्य-मुख्य आत्मीय जनों को अलग-अलग विभागों का व्यवस्थापक नियत कर दिया गया था ताकि आगतजनों के समुचित स्वागत-सत्कार में कहीं कोई त्रुटि न रहे।

× × ×

सभी अपने-अपने विभागों का कार्य्य ठीक तरह से सम्पन्न करने-कराने में संलग्न थे। भगवान श्रीकृष्ण ने बड़े कौतूहल से यह सब देखा और युधिष्ठिर से कहा—राजन मुझे भी तो कुछ काम बतलाओ। क्या इस विशाल राजसूय यज्ञ की तय्यारी में मेरे लिए कोई काम नहीं है?

× × ×

युधिष्ठिर जगदात्माका यह व्यङ्ग सुनकर मुस्कराये, उन्हें प्रणाम किया और बोले—महाराज सेवक स्वामी को भी क्या कोई काम बता सकता है। आप सर्वोपरि हैं। बैठकर देखते रहिए यही बहुत है आपकेलिए।

× × ×

यदुपति बोले—राजन! यह नहीं हो सकता, कोई-न-कोई काम मुझे बताना ही होगा।

× × ×

युधिष्ठिर ने कहा—यदि ऐसा ही है तो जो काम भी आपको रुचे उसे आप सम्हाल लीजिए।

श्रीकृष्ण ने कहा—ठीक है राजन् चुन लिया मैंने अपना काम।

× × ×

युधिष्ठिर ने पूछा—वह क्या महाराज?

श्रीकृष्ण बोले—यज्ञ में जितने भी अतिथि आवेंगे उनका पाद-प्रक्षालन अर्थात् पैर धोकर उनकी अग्र पूजा मैं करूँगा। यह काम अब तक किसी को सौंपा भी नहीं गया है अतः मैंने यही अपने लिए चुन लिया है।

× × ×

महाराज युधिष्ठिर सिर झुकाकर चुप हो गये। श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में यही काम किया, सभी आमंत्रित आगतोंके पैर धोकर उन्होंने उनको सत्कृत किया और संसार के सामने यह उदाहरण पेश किया कि महान आत्मा की महत्ता का आधार सबसे अधिक विनम्र और विनयशील बनना ही होता है। इसीलिए विनम्रता की गणना भी तो भगवान ने दैवी सम्पदाओं में की है।

× × ×

क्या भगवान श्रीकृष्ण के जीवन का यह आचरण हम सब अपनाकर अपने को विनम्र और विनयशील बनाने का प्रयत्न करके उनके सच्चे भक्त बनेंगे?

आया हूं मैं द्वार तुम्हारे

[श्री ठा० चन्द्रप्रतापसिंह रावत मटियाना [मेरठ]

टूटे फूटे गीत बना कर,
आया तुम्हें सुनाने को।
नैन तरसते हैं मेरे,
प्रभुजी के गीत सुनाने को।
आया तुम्हें रिझाने को,
पास नहीं कुछ मेरे स्वामी,
क्या सेवा कर पाऊंगा।
कृपा करो हे नाथ दीन पर,
चरणों को अपनाऊंगा।
प्राण तरसते हृदय तरसता
जीवन सफल बनाने को।
पाकर तुमसा नाथ—नाथ मैं,
ना अनाथ रहने पाऊं।
दो मुझ को वरदान भक्ति का
गीत प्रभू जी के गाऊं॥
आया हूं मैं द्वारा तुम्हारे,
मन की व्यथा सुनाने को।

—×•×—

संत-पुरुष

सच्चा संत पुरुष अपने हृदय में आराम लेता है और शान्त रहता है। दुःख, विघ्न और मृत्यु भी उसके आनन्द के स्थान हैं। वह सदा यही चाहता है कि लोग उसके विषय में कुछ भी न जानें। ख्याति और मान-प्रतिष्ठा से वह बहुत दूर रहता है।

—श्रुति-सार

सम्प्रज्ञात समाधि और उसके विशेष अनुभव

श्री दुर्गासिंहजी तोमर एम. ए., एल. एल.बी.
सहायक आयुक्त आबकारी

मेरे परम पूज्य गुरुदेव अनन्त श्री-सम्पन्न योगयोगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज अपने प्रवचनों में प्राय: कहा करते हैं कि यदि सैकड़ों योजनों तक फैला हुआ पापों का पहाड़ भी हो तो वह भी ध्यानयोग द्वारा नष्ट किया जा सकता है। यथा :—

यदि शैल समं पापम्,
विस्तीर्णम् बहु योजनम्।
भिद्यते ध्यान योगेन,
नान्यो भेदः कदाचनः ॥

पूज्य गुरुदेव जी इसके अतिरिक्त यह भी बतलाया करते हैं कि जिस योगी की वृत्ति अन्तर्मुखी बन जाया करती है और जिसके सामने रूहानी दृश्य आने शुरू हो जाते हैं अवश्य रूप से सिद्धियां उसका साथ दिया करती है। इसका परिणाम यह निकलता है कि वह योगी जिस-जिस कामना का चिन्तन करता है वह उसे सहज सुलभ हो जाया करती है। यह सब ध्यान योगी की गतियां हैं।

× × ×

पूज्य गुरुदेव जी के निर्देशन में उनकी चरण-शरण में आकर ध्यान योग की थोड़ी बहुत साधना मैंने की है। अपने ध्यान योग के अभ्यास में श्री सद्गुरु कृपा से जो-जो अनुभव लाभ मुझे हुए हैं उन्हें मैं सर्वसाधारण की जानकारी के लिए यहाँ लिख देना उचित समझता हूं। मेरा यह विश्वास दृढ़ से दृढ़तर हो गया है कि योगी जब योग की उन्नत भूमिकाओंमें प्रवेश करता है तब से ही उसकी मानस-शक्ति उसकी सहायिका बन जाया करती है।

मेरी ध्यान योग की अनुभूतियोंमें निश्चय ही सद्गुरु द्वारा प्रदत्त शक्तिपात मेरा मुख्य अवलम्बन रहा है। मेरे कुटुम्बीजन भी अथवा जो कोई भी ध्यानयोग अभ्यास के सत्संग में श्रद्धा और विश्वास लेकर बैठ गये—वे सब भी सद्गुरु कृपा के अद्भुत लाभ उठाते रहे हैं। नीचे की कुछ घटनायें इसी तथ्य को प्रकाश में लाती हैं :—

उपचार की निवृत्ति

जिस समय मैं दतिया में आबकारी अधिकारी था तब एक डाक्टर का अभियोग मेरे सामने आया। उसने अपने स्वार्थ वश जनहित की उपेक्षा करते हुए कानून के विरुद्ध वर्जित औषधियों का प्रयोग किया। उसका यह कार्य दण्डनीय अपराधों की श्रेणी में आता था अतः उसे दण्डित किया गया। इस दण्ड से खिन्न होकर—प्रति हिंसा की भावना लेकर वह एक तांत्रिक के पास गया

और उससे प्रार्थना की कि वह मुझ पर अनिष्टकारक तन्त्र का प्रयोग करे। डाक्टर की प्रार्थना पर तान्त्रिक ने अपने अनिष्टकारक तन्त्रका मुझ पर प्रयोग किया, किन्तु आनन्दकन्द परम कल्याणघन श्री प्रभु जी की कृपा से मुझ पर उस तान्त्रिक के अनिष्टकारक तन्त्र का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। मुझे उसके अनिष्टकारक तन्त्र प्रयोग का सही समय व रूप मालूम हो गया था—मेरा मन ध्यानस्थ था—इसलिए अखण्ड मण्डलाकार आनन्दकन्द प्रभु जी के व्याप्त तेज के अन्दर उसका तन्त्र प्रभाव रत्ती भर भी प्रवेश न कर सका। उल्टा उसको अपने दुष्कृत्य पर पछताना पड़ा और उसे दुःख भी उठाना पड़ा।

× × ×

अनिष्ट-निवारण

जिला मुरैना में जौनई नामक एक ग्राम है। इस ग्राम में मेरे कुटुम्बी जन निवास करते हैं। वह सभी आनन्दकन्द श्री प्रभु जी के अनन्य उपासक हैं। आबाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष सभी प्रभु जी की आरती मगन मन से किया करते हैं और सभी ध्यान और चिन्तन में अपने समय का अधिकांश भाग व्यतीत किया करते हैं। एक दिन एक साध्वी स्त्री जैसे ही अपने घर से बाहर निकली उसे गर्जन चलने जैसा भारी शब्द सुनाई दिया। वह भारी शब्द उसने सुना। इसके बाद ही उसने सुना—देवी तुम सब लोग इस घर से बाहर निकल जाओ और घर का सारा सामान भी बाहर निकाल लो—यह छत अभी गिरने वाली है-एक बार नहीं, दो-तीन बार यह वाक्य उस देवी ने सुना। कौन बोल रहा है—कौन कह रहा है—यह वह समझ न सकी। क्योंकि देखने पर इधर-उधर उसे कोई भी नजर न आया। यह आवाज आकाश-वाणी के रूप में आ रही है—यही अन्त में गम्भीरता से विचारने पर वह समझ पाई। वह तुरन्त घर के भीतर पहुंची और सभी से कहा—'सब अपने-अपने सामान के सभी शीघ्र ही घर के बाहर निकल चलो—मुझे श्री प्रभु जी का ऐसा ही आदेश हुआ है।' कुछ ही देर में सभी लोग घर के बाहर हो गये और सारा सामान भी बाहर निकाल लिया गया। लोगों ने आश्चर्य से देखा - जैसे ही वे सब बाहर आये, मकान की छत धड़ाम से गिर पड़ी। इस प्रकार परम करुणाघन प्रभु जी ने अपने अनन्य भक्तों की रक्षा की। एक भयंकर दुर्घटना के शिकार होते होते सभी सुरक्षित बच गये। ठीक ही कहा है:—

जाको राखै साइयां,
मारि सकै ना कोय।
बाल न बांका करि सकै,
जो जग बैरी होय॥

संस्कार-निवृत्ति

मैंने अपने सद्गुरु देव के श्री मुख से कई बार यह भी सुना है कि योगी अपने संस्कारों का साक्षात्कार भी कर सकता है और जितना अधिक उसका उत्थान हो

जायगा उतनी ही उसको संस्कार-निवृत्ति की योग्यता भी आ जायेगी। मैं यहां एक इसी प्रकार की घटना का उल्लेख कर रहा हूं, जिसमें आनन्दकन्द योगयोगेश्वर श्री प्रभुजी ने नेपाल धाम से उठकर अपने प्रिय बालक को संस्कार साक्षात्कार कराके उसकी निवृत्ति कराई।

एक दिन मैं अपने शुद्ध स्वरूप में समाहित चित्त होकर बैठा था, उस समय मन में जितनी शान्ति थी उसका वर्णन नहीं कर सकता। इसी अवस्था में क्लेशात्मक संस्कार आये किन्तु मुझ पर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ा, इन कुसंस्कारोंने ध्यान अवस्था में ही अपना प्रभाव दिखाया और वे समाप्त हो गये। श्री गुरुदेव कहा करते हैं कि क्लिष्ट संस्कारों में अक्लिष्ट और अक्लिष्ट संस्कारों में क्लिष्ट संस्कारों का उत्थान-पतन हुआ करता है।

एक बार की एक और घटना है। मैं एक दिन अपने शुद्ध स्वरूप में समाहित था, जिस प्रकार कि मैं अपने नित्य के अभ्यास में लीन रहा करता था उसी प्रकार मन को लीन करके आनन्द में बैठा था। अकस्मात् ध्यान अवस्था में ही यह घटना घटी, मेरे दादा गुरु योगयोगेश्वर श्री रामलाल जी महाराज सामने आए। उन्होंने मुझे एक संस्कार का साक्षात्कार कराया और बतलाया कि पुत्र तुम्हारा यह संस्कार लम्बे उपभोग का है पर तुम विवेक ख्याति की ओर हो और प्रभु की कृपा से अपने आत्म तेज में अवस्थित रहते हो इसलिए यह क्लिष्ट संस्कार कल दिन के दो बजे तुम्हें प्राप्त होगा और दो दिन में इसका भुगतान खत्म हो जायगा। दो दिन तुम कष्टमें रहोगे इसलिए चिन्ता नहीं करना, बात ज्यों-की-त्यों हुई। मैंने अपनी ध्यान समाधि से उठकर अपनी सहधर्मिणी भगवती देवी से यह सब घटना ज्यों-की-त्यों बता दी ताकि वह भी मेरे कष्ट को देख करके दुःखी न हो। दूसरे दिन ठीक दो बजे जैसा कि श्री प्रभु जी ने आदेश दिया था मैं तीव्र ज्वर वेदना से पीड़ित हो गया और उसके दो दिन के उपभोग के बाद स्वयं ही बिलकुल ठीक हो गया। किसी भी प्रकार की तकलीफ मेरे शरीर में न रही। इस प्रकार के संस्कारों का प्रत्यक्ष मुझे कितनी ही बार होता रहता है। और जिस प्रकार मैं देख लेता हूं उसी प्रकार उसकी निवृत्ति स्वतः ही मैं देख लिया करता हूं।

यथा अन्नं तथा मनः

मैंने अपने श्री गुरुदेव जी के व्याख्यानों में यह भी कई बार उनके मुख से सुना था कि मनुष्य जिस प्रकार का अन्न सेवन करता है उसी प्रकार का मन उसका बन जाया करता है क्योंकि हमारा शास्त्रीय नियम है कि—

तापकस्य रजसः सत्वमेव तप्यम्

अर्थात् रजोगुण तापक है और सतोगुण तप्य है। रजोगुण का प्रभाव सतोगुण पर तत्काल पड़ जाया करता है इसलिये विवेक-सेवी एवं योगाभ्यासी व्यक्ति को अवश्य ही

शुद्ध अन्न का सेवन करना चाहिये। मैं एक बार सरकारी कार्यवश कहीं दौरे पर गया हुआ था। मैं अपने घर में रहता हुआ यत्न करता हूं कि शुद्ध सात्विक अन्न का ही सेवन करूं, घर के बच्चे-बच्चे इस बात को जानते हैं कि मैं किस प्रकार के अन्न को सेवन करता हूं।

उसी प्रकार का मेरे लिये शुद्ध सात्विक भोजन तैयार होता है। सरकारी कार्य वश दौरे पर जाने पर एक बार किसी ऐसे व्यक्ति के हाथ का भोजन करना पड़ा जिसकी वृत्तियां रजोगुण प्रधान थीं सात्विक नहीं। मैंने मित्रता के नाते भोजन तो कर लिया किन्तु यह भी मैंने साथ में अनुभव किया कि उसी दिन मेरी ध्यान-स्थिति में अन्तराय पैदा हो गया और वह विकृत वृत्ति कई दिन के बाद सुधार पाया व अपनी पूर्व स्थिति में आ पाया, इसलिये हर साधक के लिये यह आवश्यक है कि वह शुद्ध सात्विक अन्न का सेवन करे।

साधक भाई मेरी इन घटनाओं से यथा लाभ प्राप्त कर सकें इसलिए इन्हें श्री गुरुदेव जी की आज्ञा से लिखा गया है।

साधना-मंजिल है

'साधना को छोटी वस्तु मत समझो। यह सद्गुरु की दी हुई सिद्ध अवस्था है। यह रास्ता नहीं, मंजिल है। आनन्द की पराकाष्ठा है। रास्ता समझोगे तो मंजिल दूर जानकर मन आलसी होगा। है भी यही बात। साधना ही मंजिल है। जो लोग बिना किसी लालच के रास्ते पर नहीं चल सकते, उनके लिये ही मंजिल अलग बतानी पड़ती है, नहीं तो भैया, मंजिल पर पहुंचकर करोगे? करना तो यही पड़ेगा।'

× × ×

'जितना सत्संग करे, उससे दुगुना मनन करे। थोड़ा खाकर अधिक चबाने से स्वाद बढ़ता है। जैसे नींव के बिना महल का टिकना असम्भव है, वैसे ही मनन के बिना सत्संग का। जैसे भोजन के एक-एक ग्रास से भूख मिटती है, तृप्ति होती है और शरीर का बल बढ़ता है, वैसे ही सत्संग की जुगाली करने से विषय की भूख मिटती है, रस की वृद्धि होती है, प्रेम का एक-एक अंग परिपुष्ट होता है।' —भक्त कोकिल सांई

गुरु-कृपा का एक ज्वलन्त उदाहरण

[श्री विजयसिंहजी एम. ए., रिसर्च स्कालर वाराणसी]

लौकिक एवं पारलौकिक सभी संबन्धों में जीव का सद्गुरु तत्व से हुआ सम्बन्ध ही परम उत्कर्ष देनेवाला सम्बन्ध है। इस बात को भली प्रकार से जानने वाला तथा गुरु तत्वानुरागी व्यक्ति प्रतिपल गुरु-कृपा से सिंचित होता रहता है। किसी उच्चात्मा ने निम्न दोहे के अन्दर संसार के सभी उत्तम सम्बन्धों का तुलना करते हुये कहा है :—

पिता से माता सौ गुना, करती सुत से प्यार।
माता से हरि सौ गुना, हरि से गुरु सौ बार॥

गुरुदेव अपने शिष्यों के हित के लिए क्या और कहाँ तक करते हैं यह बात इस लेख के चरित्र नायक श्री लहरी महाशय पर हुये परम करुणार्णव श्री गुरुदेव की कृपासे भलीभाँति स्पष्ट हो जावेगी। सद्गुरु कृपा जीवों पर बहुत ही मर्ममय ढंग से हुआ करती है। कब किस कर्म में संलग्न व्यक्ति किस प्रकार से संत-कृपा भाजन बन जावेगा इस बारे में कहना या सोचना साधारण मानव-मस्तिष्क के बाहर की बात है। गुरु की सांसारिक लीला (अर्थात् गुणातीत होकर भी गुणों में ही वर्तते हुये) देखकर अच्छे ऊँचे ध्यान-स्थित वाले साधक शिष्य तथा सत्संगी पुरुष भी अपने विवेक से च्युत होकर भ्रमवश अर्थ को अनर्थ में परिवर्तित करके अपनी साधना से हाथ धो बैठते हैं। पुनः सांसारिक साधारण आत्म-स्थिति वालों का कहना ही क्या है। गुरु का विलक्षण प्यार एवं संरक्षण प्राप्त करके गृहस्थ बंगाली ब्राह्मण श्यामाचरण लहरी योगवित् बन गये। इतना ही नहीं अपितु गुरु-आज्ञा से योगरूपी अमोघ अमृतमय औषधि द्वारा भवताप से पीड़ित अनेकों जीवों को उन्होंने पूर्णरूपेण मुक्त कर दिया। उनके पूर्व जीवन पर थोड़ा प्रकाश डालते हुये यहाँ इस लेख में उनको किस प्रकार सद्गुरु देव की प्राप्ति हुई इस लोमहर्षक घटना का वर्णन सर्व जनहिताय की भावना को दृष्टि में रखते हुये किया जा रहा है।

श्री लहरी महाशय का जन्म बंगाल प्रांत के नदिया जिला अन्तर्गत ग्राम घुर्नी में सन् १८२८ ई० माह सितम्बर दिनाङ्क ३० को पवित्र बंगाली ब्राह्मण परिवार में हुआ था। आपके पिता का नाम

श्री मुक्ताकाशी श्री एवं शुभ्रमति माताका नाम गौरमोहन लहरी था। विधाता का विधान बहुत ही अनोखा है। ऐसे दिव्य बालक को जब कि सारे परिवार के लाड़-प्यार के साथ माँ की ममता द्वारा हृदय स्थान का पोषण होने का समय था तब कठोर काल ने माता गौर मोहन लहरी को परलोकगामी बना दिया। इस परिवार पर अल्प समय में ही पुनः वज्रपात हुआ। सम्पूर्ण घुर्नी ग्राम जालसी नदी के विकट जल-प्रवाह में समाहित हो गया। सौम्य तथा धर्म परायण श्री मुक्ताकाशी जी अपने थोड़े बचे हुये गृहस्थी के सामान, धार्मिक ग्रन्थों तथा कुटुम्बियों के साथ अनाथ नाथ भोले नाथ की नगरी काशी में आकर सर्वदा के लिए बस गये। गम्भीर देदीप्यमान बालक लहरी महाशय प्रारम्भ से ही अद्भुत प्रतिभा वाले थे। आपका पूरा नाम श्यामाचरण लहरी था। चार-पाँच वर्ष की अवस्था में जब ये अपने परिवार के साथ नदिया जिले में थे तब उन्हीं दिनों लोगोंने इस बालक को ग्रीवा तक नदी के किनारे बालू में ढका ध्यान मुद्रा में घण्टों बैठा हुआ कई बार देखा था। बालू के ढेर के नीचे कैसे दबकर पद्मासन से बैठ जाते हैं यह रहस्य सभी के मन को आश्चर्य-चकित बना देता था। उन लोगों के मन में ऐसा विचार उठा करता था कि यह बालक कोई साधारण बालक नहीं अपितु पूर्व जन्म का सिद्धयोगी है अन्यथा ऐसे विचित्र लक्षण कहाँ देखने को मिलते हैं। भगवद्गीता में धनुर्धारी अर्जुन ने जगदात्मा भगवान् श्रीकृष्णजी से पूछा–'हे प्रभो! आप हमें पथ-भ्रष्ट योगियों की क्या गति होती है बतावें कहीं उनका शिथिल प्रयास बिना फल दिये (भगवत प्राप्ति कराये बिना) ही नष्ट तो नहीं हो जाता है?' इस पर भगवान् श्री कृष्णचन्द्र ने अपनी पावन वाणी में कहा :—

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति॥
प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योग भ्रष्टोऽभिजायते॥

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम्॥
तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम्।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन॥

अर्थात् हे पार्थ ! ऐसे पुरुष का न तो इस लोक में और न परलोक में ही नाश होता है। धर्मोचित कर्म करने वालों की कभी भी दुर्गति नहीं होती। जहाँ तक जन्म का प्रश्न है। योग-भ्रष्ट पुरुष स्वर्गादिक तथा अन्य उत्तमोत्तम लोकों को प्राप्त होकर पुनः वर्षों उपरान्त वे शुद्ध आचरण वाले श्रीमान पुरुषों के घर में जन्म ग्रहण करते हैं। अथवा वैराग्यवान पुरुष उन लोकों में न जाकर ज्ञानवान योगियों के ही कुल में जन्म लेता है। परन्तु इस प्रकार का जन्म प्राप्त करना इस संसार में अति दुर्लभ है। वह पुरुष ऐसा जन्म प्राप्त करने पर पूर्व जन्म के किए गये साधनाओं से ही अनायास समत्व बुद्धि योग को प्राप्त कर लेता है। हे अर्जुन ! तब वह पुनः अपने आत्मस्वरूप को जानने के लिए अच्छी प्रकार यत्न करता है।

श्री लहरी महाशय के जीवन चरित्र को पढ़कर यही आभास होता है कि उनका जीवन प्रत्येक रूप से भगवान श्रीकृष्णचन्द्र के अमृतमय वचनों को चरितार्थ करने वाला रहा है। काशी में लहरी महाशय युवावस्था को प्राप्त हुये। आपके उदार हृदय पिता ने आपको उस समय के धुरन्धर विद्वान् पंडित नागभट्टजी की छत्रछाया में वेदों का तथा संस्कृत का अध्ययन कराया। बाद में स्कूल द्वारा इन्होंने भलीभाँति, हिन्दी, उर्दू, बंगाली, फ्रेन्च तथा अंग्रेजी भाषाओं का अध्ययन किया। साधारण व्यक्ति कि भाँति आपका पाणिग्रहण संस्कार सन् १८४६ ई० में काशीमोनी जी के साथ हुआ। पतिपरायण काशी मोनी जी का सम्पूर्ण जीवन धार्मिक भावनाओं एवं सद्-वृत्तियों से ओत-प्रोत रहा है। २३ वर्ष की अवस्था में श्री लहरी महाशय जी अंग्रेजी सरकार के मिलेटरी (सेना) इन्जीनियरिंग विभाग में एकाउन्टेन्ट के पद पर नियुक्त हुए और अपनी कर्मठता तथा बौद्धिक कुशाग्रता के कारण कम समय में ही कई अन्य विभागीय

तरक्कियों को प्राप्त कर लिया। प्रारम्भिक दश वर्ष के कार्य काल में आपने गाजीपुर, मिर्जापुर, नैनीताल, दानापुर तथा बनारस जिलों में स्थानांतरित होकर कार्य किया। ३३ वर्ष के उम्र में लहरी महाशय का साधारण जीवन एक अद्भुत ऐश्वर्ययुक्त दिव्य-पुरुष के स्पर्श मात्र से असाधारण बन गया। वह घटना-काल के प्रबल प्रवाह में भी गुरु-कृपा के अपूर्व उदाहरण के रूप में सर्वदा स्मरण की जाती रहेगी।

दिव्य घटना--

यह घटना सन् १८६१ ई० की है। उन दिनों लहरी महाशय श्री दानापुर (बिहार प्रांत) में मिलिटरी इन्जीनियरिंग विभाग में एकाउन्टेन्ट थे। बसंत ऋतु प्रारम्भ हो चुकी थी। एक दिन आफिस मैनेजर ने लहरी महाशय को अपने पास बुलवाकर कहा--लहरी! तुम्हें तुम्हारे अनुभव एवं कार्य दक्षता के आधार पर उच्च अधिकारियों ने तरक्की प्रदान की है तथा साथ ही तुम्हारा स्थनान्तर रानीखेत के लिए हुआ है। जहाँ अभी एक नया सेना विभाग कायम किया गया है। तुम्हें अति शीघ्र वहाँ पहुँचने का आदेश उच्च विभागीय स्तर से हो चुका है। कर्मनिष्ठ लहरी महाशय दूसरे दिन ही आवश्यकीय सामान एवं एक नौकर के साथ रानीखेत के लिए प्रस्थान कर गये। उन दिनों वर्तमान काल की तरह जगह-जगह रेलगाड़ी तथा बस इत्यादि आधुनिक यातायात का साधन विद्यमान नहीं था। पहाड़ी प्रदेशों तक लोग पैदल घोड़ों तथा सामान्य सम स्थलों में घोड़ा गाड़ी से यात्रा किया करते थे। लहरी महाशय भी ५०० मील लम्बी यात्रा का अधिकांश भाग घोड़ों या बग्घी (घोड़ा-गाड़ी) द्वारा तय करके पूरे ३० रोज बाद रानीखेत पहुँचे। हिमालय का पठारी भाग चारों ओर रमणीय पहाड़ों से घिरा हुआ था तथा वे पहाड़ सदा हरे भरे जंगलों से आच्छादित सारा मनोरम दृश्य एकाएक नवागत व्यक्ति को चित्रलिखित सा कर देने वाला था। लहरी महाशय नित्य ही टहलते हुये पास के पहाड़ी जंगलों में घूमने जाया करते थे। इस नये कार्यालय में कार्य की कोई व्यवस्था भी नहीं थी।

वहाँ के निवासियों ने एक रोज लहरी महाशय को बताया कि यह पहाड़ी भाग किसी तेजस्वी महात्मा द्वारा पवित्र किया हुआ है। अनेक लोगों पर उस दिव्य पुरुष की कृपा हो चुकी है। बात आयी और गयी। समय व्यतीत होता रहा। एक रोज जब दोपहर ढलने ही वाला था। एकाएक लहरी महाशय के मन में सामने दीख रहे निकटवर्ती पहाड़ी पर घूमने का विचार उठा और वे उधर ही घूमते हुये जंगलों से निकलते हुये जा रहे थे कि पहाड़ी से किसी ने कई बार आवाज देकर लहरी महाशय को ऊपर आने को कहा। आश्चर्य की बात तो यह थी कि बुलाने वाले ने लहरी महाशय का नाम लेकर ऊपर आने के लिए आवाज दी थी। लहरी महाशय के मानस पटल में अनेक संकल्प-विकल्प उठते रहे परन्तु वे उस द्रोणगिर नामक पहाड़ी पर चढ़ने लगे। वे आश्चर्य चकित थे कि इस एकान्त घने जंगल में उनके नाम से परचित कौन व्यक्ति हो सकता है? उस व्यक्ति का मुझसे क्या प्रयोजन होगा? हो सकता है पहाड़ी से उतरते समय सन्ध्या हो जाय। जंगलों में रात्रि शीघ्रता से अपनी काली चादर फैला देती है। ऐसे में पगडण्डियों का रास्ता भटक जाना असम्भव नहीं होता। मन की तरंगों एवं उधेड़बुन में वे ऊपर जा पहुंचे। वहाँ पास में एक गुफा दिखाई पड़ी। एकाएक उनकी दृष्टि पास की चट्टान पर खड़े नवयुवक सुडौल कांतिवान व्यक्ति पर पड़ी जो उनकी ओर ही देखता हुआ मुस्करा रहा था। लहरी महाशय जब उस व्यक्ति के समीप गये उसने अपनी पुष्ट बाहों के घेरे में लेकर बड़े प्यार से कहा–'लहरी तुम आगये।' मैंने ही तुमको यहाँ बुलाया था। इस गुफा में अभी तुम आराम करो। लहरी महाशय अब और भी आश्चर्य चकित थे। वह नवयुवक महात्मा शक्ल सूरत में बिलकुल लहरी महाशय से मिल रहा था। मात्र ताम्रवर्णी की लम्बी जटा ही विभिन्नता का एक कारण हो सकता था या लहरी महाशय की प्रौढ़ अवस्था। नवयुवक महात्मा ने विचार-विनिमय स्पष्ट हिन्दी भाषा में किया था। गुफा स्वच्छ थी तथा उसमें कई ऊनी आसन व कमण्डल रक्खे हुये थे। गुफा की ओर देखता हुआ देखकर महात्मा

लहरी महाशय को साथ लेकर गुफा में गये तथा एक लपेट कर रखे हुये आसन की ओर इशारा करके कहा—लहरी ! क्या इस आसन के बारे में तुम्हें याद आ रहा है ? लहरी महाशय ने विनम्रता से उत्तर दिया नहीं महात्मन् ! मैं इस स्थान पर पूर्व कभी नहीं आया हूं अतः इन सामानों से मेरा कोई सम्बंध नहीं है। अब मुझे नीचे जाना चाहिए क्योंकि संध्या होने वाली है। सुबह हमें आफिस में कार्य भी करना है। उस दिव्य पुरुष ने हंसते हुये अंग्रेजी भाषा में कहा–लहरी आफिस तुम्हारे लिए यहां लाया गया है न कि तुम यहां आफिस के लिए आये हो। बेटे ! मैंने ही तुम्हारे सर्वोच्च अधिकारी के मन में तुम्हे इस निर्जन स्थान में स्थानान्तरित करने की प्रेरणा दी थी। योगी अपने योग-बल से संसार के सभी प्राणियों को अपनी इच्छा अनुसार प्रेरित कर सकता है। क्या तुम्हें कुछ भी याद नहीं आता। यह गुफा। यह स्थान ! क्या अब भी तुम्हें अपरचित सा लग रहा है, लहरी महाशय उन दिव्य-पुरुष के मुखसे धारा प्रवाह अंग्रेजी भाषा सुनकर तथा उपरोक्त विषयों से अपना कोई सम्बंध न समझकर मौन आश्चर्य चकित खड़े रहे। लहरी महाशय को मौन खड़ा देखकर परम योग-शक्ति–सज्जित उन महापुरुष ने आगे बढ़कर लहरी महाशय के भृकुटि-मध्य में हलका स्पर्श कर दिया। इस क्षणिक स्पर्श ने उनके मन एवं तन में विचित्र सनसनाहट फैला दी। पूर्व जन्म की मधुर स्मृति जागृत हो उठी। लहरी महाशय आनन्दातिरेक से विह्वल हुये चारों ओर देखने लगे तथा हर्षमय अस्फुट शब्दों में कहते जाते हां, मुझे सब याद हो आया। आप मेरे दिव्य अतुलनीय परम तेजस्वी गुरुदेव बाबा जी है। आप की ही कृपा से मैंने बहुत वर्ष इस गुफा में व्यतीत किये है। आंखों से अविरल अश्रु-प्रवाह तथा आनन्द की उत्ताल तरंग में एकाएक समाहित होकर लहरी महाशय अपने गुरुदेव श्री बाबा जी के चरणकमलों में लिपट गये। सृष्टि के कल्याण कर्त्ता विश्वात्मा योगयोगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण जी द्वारा भगवद्गीता में वर्णित अमृतमय वाणी लहरी महाशय के उत्कर्षमय जीवन-चरित्र का अपूर्व सूत्र बन गयी :—

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्द ब्रह्मातिवर्तते॥

अर्थात्—योग-भ्रष्ट हुआ व्यक्ति नूतन जन्म में विषयों के प्रबल प्रवाह में फँसा होने पर भी पूर्व जन्म के अभ्यास से निःसन्देह ईश्वर-तत्त्व की ओर आकर्षित किया जाता है तथा समत्व बुद्धिरूप योग का जिज्ञासु भी वेद में कहे तमाम कर्मों के फल को उलंघन कर जाता है।

श्री सद्गुरु देव स्वयं ही ईश तत्त्व हैं। वे ही जीवों को अपनी योगमाया से आकर्षित करके उसके उत्थान के हेतु भांति-भांति की लीलायें किया करते हैं। लहरी महाशय आगे चलकर पूर्ण योगी बन गये। उनके श्री गुरुदेव जी की अद्भुत लीलायें इस भारत-भूमि में ही नहीं, अपितु सर्वत्र विश्व में व्याप्त हैं। ऐसे महापुरुषों की अनुछाया खोजने से नहीं मिलता बल्कि जब वे स्वयं समक्ष प्रकट हो जाते हैं और अपना वरदहस्त प्रदान करते हैं, तब जीव चाहे दुराचारी हो, चाहे महान् तपस्वी। उनके कृपा-भाव से इस अथाह संसार-सागर से पार हो जाता है।

अनमोल बोल

ब्रह्म सच्चिदानन्द जो व्यापक है सब ठौर।
राम उसी का नाम है अर्थ न समझो और॥
जिसने ब्रह्मानन्द का किया निरन्तर भोग।
उस योगी के योग में टिकता नहीं वियोग॥
जिसके द्वारा हो रहे सिद्ध समस्त प्रयोग।
ठीक जानते हैं उसे विरले ही गुरु लोग॥
तन से सेवा कीजिए मन से भले विचार।
धन से या संसार में करिये पर-उपकार॥

योग मार्ग की अधिकारिणी नारी

[श्रीमती सरिता भारद्वाज एम.ए. बी.एड.]

प्राणिमात्र का एक मात्र ध्येय परमानन्द की प्राप्ति ही है। चींटी से लेकर ब्रह्मपर्यन्त सभी शाश्वत सुख के लिए लालायित रहते हैं। एक क्षण के लिए भी किसी को दुःख अभीष्ट नहीं है। परन्तु परिणाम इसका विपरीत ही है। सभी किसी न किसी ताप से सन्तप्त हो रहे हैं। जो जितना ही अधिक सुख के लिए छटपटाता है वह उतना ही अधिक आपत्तियों से ग्रसित नजर आता है। प्रश्न उठता है कि जीव सुख की चेष्टा करने पर भी दुःख में फंसता है इसका क्या कारण है। वह जहाँ सुख को ढूंढना चाहता है वहाँ तो दुख का भंडारा छिपा हुआ है। एक साधारण कहावत है संसार में कहीं भी घूम आओ सुख तो अपने घर में ही है अब विचारना है कि वह अपना घर क्या है जिससे बिछुड़ने के कारण जीव इतना सन्तप्त हो रहा है? शास्त्रों के अनुसार वह घर आत्मा है वही अक्षय आनन्द की निधि है, वही परम प्रेमास्पद है। उसी के सम्बन्ध से और उसी के लिए अन्य वस्तुयें भी प्रिय जान पड़ती हैं। इस प्रकार आत्म-साक्षात्कार ही मनुष्य का एकमात्र प्रधान कर्तव्य है। उसके लिए महाउभव महर्षियों ने जो मार्ग बताए हैं उन्हीं को 'योग' कहते हैं। जिन-जिन साधनों से जीव उस निरतिशय विश्राम-स्थान तक पहुंच सकता है वे सभी योग पद वाच्य हैं। किस जीव को किस योग पथ का आश्रय लेना चाहिए इसका निर्देश योगारूढ़ गुरुदेव ही कर सकते हैं।

योग की महिमा बताते हुए स्वयं भगवान् मनुजी ने कहा है :—

> दह्यन्ते ध्मायमानानां
> धातूनां हि यथा मलाः।
> तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते
> दोषाः प्राणस्य निग्रहात्॥
>
> (मनु. अ. ६, श्लोक ७१)

अर्थात् जिस प्रकार अग्नि में तपाई हुई धातुओं के मैल जल जाते हैं उसी प्रकार प्राणों के रोकने से प्राणायाम करने से इन्द्रियों के दोष नष्ट हो जाते हैं।

अत्रि-संहिता में भी है :—

> योगात् संप्राप्यते ज्ञानं
> योगो धर्मस्य लक्षणम्।
> योगः परं तपो ज्ञेयस्त-
> स्माद् योगं समभ्यसेत्॥
> न च तीव्रेण तपसा
> न स्वाध्यायैर्न चेज्यया।
> गतिं गन्तुं द्विजाः शक्ता
> योगात् संप्राप्नुवन्ति याम्॥

अर्थात् योग से ज्ञान प्राप्त होता है। योग ही धर्म का लक्षण है और योग ही परम तप है। इसलिये योग का अभ्यास करना चाहिए। बड़ी तीव्र तपस्या से, शास्त्रों के अध्ययन से तथा यज्ञों से जो सद्गति नहीं मिल सकती वह द्विजों को योगाभ्यास से मिल सकती है।

गरुड़ पुराण में कहा है :—

भव तापेन तप्तानां
योगो हि परमौषधम्।

संसार के ताप से तपे हुए मनुष्यों के लिये योग ही बड़ी औषधि है।

स्कन्दपुराण में कहा है :—

आत्म ज्ञानेन मुक्तिः
स्यात्तच्च योगादृते नहि।
सच योगश्चिरं काल-
मभ्यासा देव सिध्यति॥

आत्म-ज्ञान से मुक्ति होती है परन्तु वह आत्म-ज्ञान योग के बिना नहीं हो सकता, वह योग चिरकाल तक अभ्यास करने से हो जाता है।

कूर्मपुराण के अनुसार योगरूप अग्नि सम्पूर्ण पाप के पिंजर को शीघ्र ही जला देती है। उससे ज्ञान आप ही प्रकाशित होता है और उस ज्ञान से मुक्ति प्राप्त होती है।

योगाभ्यास के महत्व को बताते हुये योगबीज में स्वयं शिवजी महाराज ने पार्वती के प्रति कहा है :—

ज्ञाननिष्ठो विरक्तो वा
धर्मज्ञोऽपि जितेन्द्रियः।
विना योगेन देवोऽपि
न मोक्षं लभते प्रिये॥
ब्रह्मादयोऽपि त्रिदशाः
पवनाभ्यास तत्पराः।
अभूवन्नंतक भयात्
तस्मात् पवनमभ्यसेत्॥

अर्थात् हे पार्वती! मनुष्य बड़ा ही ज्ञानी क्यों न हो, विरक्त क्यों न हो, धर्मात्मा क्यों न हो अथवा जितेन्द्रिय क्यों न हो, बिना योगाभ्यास के मोक्ष को नहीं पा सकता जब कि देवताओं को भी बिना योग के मोक्ष नहीं मिल सकता। ऐसा ही समझ कर ब्रह्मा आदि देवता भी योगाभ्यास में तत्पर हुए। इसलिये मनुष्य को भी यमराज के भय को मिटाने के लिये योगाभ्यास ही करना चाहिए।

भगवान् श्रीकृष्ण ने भी कहा है—हे अर्जुन! योगी तपस्वियों से भी बड़ा है, ज्ञानियों से भी बड़ा माना जाता है और कर्मियों से भी बड़ा है इसलिये तुम योगी हो।

इस प्रकार सम्पूर्ण शास्त्रों को मथकर और बार-बार विचार करके यही नवनीत-स्वरूप प्राप्त हुआ है कि योगशास्त्र ही उत्तम और मानने योग्य है।

अब हमारे सामने प्रश्न यह उठता है कि जब हमारे जीवन में योग का इतना महत्त्व है तो फिर इसका आचरण करने का

अधिकारी कौन है ? उत्तर में केवल इतना ही कहना है कि इसका अभ्यास हर एक कर सकता है। कोई जाति-भेद नहीं है। ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ज्ञानी, गुरु, व्यापारी और साधारणजन सभी इसको करने के अधिकारी हैं। स्त्री और पुरुष को भी इसमें समान ही अधिकार प्राप्त है। स्त्री, तरुण, वृद्ध, व्याधि-युक्त, दुर्बल सभी को इसका आचरण करने पर प्रत्यक्ष लाभ होता है। योगवासिष्ठ के पढ़ने से ज्ञात होता है कि योग-साधन में स्त्रियों को शीघ्र तथा और अधिकतर सफलता हो सकती है क्योंकि वे पुरुषों से अधिक तीव्र बुद्धि वाली और लगन वाली होती हैं। वे जिस बात के पीछे पड़ जाती हैं उसको पूरा किए बिना चैन नहीं लेतीं। लीला और चूड़ाला के उपाख्यान इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। लीला ने सरस्वती की उपासना द्वारा जीवन और मरण का सारा रहस्य जान लिया। राजा शिखिध्वज की बुद्धिमती और चतुर रानी चूड़ाला ने अपने पति के योग-साधन के लिए सब कुछ त्याग देने पर भी कितनी कुशलता से वेष छिपा कर उन्हें ज्ञान दिया। कितना सुन्दर जीवन-मुक्ति का उपदेश दिया। सती सावित्री ने अपने पति-प्राणों को यमराज के हाथों चले जाने पर भी पुनः प्राप्त कर लिया।

परन्तु खेद का विषय है कि अब इस प्रकार की स्त्रियां बहुत ही कम हैं जो अपनी दृष्टि को बहुत ही उच्च आदर्श तक ले जाती हैं। उनके मन की गिरावट उन्हें कभी भी उच्चावस्था तक नहीं पहुंचने देगी। इस प्रकार उनका अपना ही मन उनकी अधोगति का कारण हो रहा है।

परम सन्त कबीरदास ने भी कहा है—

मन के हारे हार हैं,
मन के जीते जीत।

आवश्यकता तो इस बात की है कि शृगाल को मारने के लिए सिंह की सामग्री एकत्रित की जाए परन्तु स्त्री-जाति में सिंह को मारने की सामग्री का तो प्रश्न ही नहीं उठता वह तो शृगाल ही मारने की सामग्री एकत्रित नहीं कर पा रही है। मन की यह गिरावट चिर-काल से स्त्री-जाति में परवरिश पा रही है और अब उसको दूर करने के लिए बड़े भारी यत्नों की आवश्यकता है।

अपनी शक्तियों को जगाने के लिए हमें प्रारम्भ से ही आत्मा को आदर्श रख लेना चाहिए तभी हम तन और मन की शक्तियों पर अधिकार पा सकेंगी। तन और मन की शक्ति जाग्रत होकर भी शीघ्र नष्ट हो जाया करती है यदि उनके अन्दर आत्मिक शक्ति का प्रवाह जारी न रहे। इसलिये केवल तन और मन की शक्तियों पर ही सन्तोष नहीं कर लेना चाहिये प्रत्युत ऊंचा उठ कर आत्मिक शक्ति के भण्डार पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करके पूर्ण लाभ उठाना चाहिए। तन को स्वस्थ रखने के लिए मोटे शब्दों में जरूरत है व्यायाम की। जितना ही वह व्यायाम, योगाभ्यास द्वारा अपने शरीर को स्वस्थ रख सकेंगी उतना ही अधिक कार्य

कर सकेंगी।

पर भारतीय समाज में स्त्रियों के लिए शारीरिक व्यायाम का रिवाज बहुत ही कम है। प्रत्युत ऐसा करना असभ्यता और निर्लज्जता समझा जाता है। जितने विघ्न स्त्री जाति को इस मार्ग में आते हैं और आ सकते हैं मैं उनको भली प्रकार जानती हूं। परन्तु यहां मैं उनके विस्तार में न पड़ कर केवल योग-साधनों का महत्त्व तथा नारी जाति के लिये उनकी कितनी आवश्यकता है बताना चाहती हूं। योगाभ्यास करने से उनकी शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियां जागृत होंगी और उनके विशेष कष्टों का सामना नहीं करना पड़ेगा। यह साधन हमारे देश में प्राचीन काल से ही चला आ रहा है। महाभारत, योगवासिष्ठ, याज्ञवल्क्य-संहिता आदि सभी प्राचीन ग्रन्थों में योग की महिमा कही है। केवल योग का साधन ही साधक को शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियों को जागृत करने के लिए पूर्णरूप से काम दे सकता है। लोक और परलोक दोनों का रक्षक यही एक अकेला साधन है।

मैं अपनी बहिनों को विश्वास दिलाती हूं कि शास्त्रों में योग-साधन का तुम्हें भी अधिकार है। तुम सब सांसारिक कार्यों को करती हुई योगाभ्यास को कर सकती हो। इससे तुम्हारा संयम और सदाचार दृढ़ होता है। लोगों में जो अनेक वहम और भ्रम इस साधन के सम्बन्ध में फैल रहे हैं वह सर्वत्र अज्ञानता के कारण है।

योग वासिष्ठ में स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि यदि किसी मुमुक्षु को ऐसी समान विचार वाली स्त्री मिल जाए तो इस संसार में इससे अधिक आनन्ददायक कुछ नहीं है। यदि वह पुरुष की रुचि के अनुकूल स्वस्थ शरीर रख कर कार्य नहीं करेगी तो किस प्रकार सहगामिनी बन सकेगी।

इस प्रकार मैं पुनः 'हठ योग प्रदीपिका' की बात याद दिलाते हुए समाप्त कर रही हूं कि—

ब्राह्मण क्षत्रिय विशां स्त्री
शूद्राणां च पावनम्।
शान्तये कर्मणामन्यद्
योगान्नास्ति विमुक्तये॥
युवा वृद्धोऽति वृद्धो
वा व्याधितो दुर्बलोऽपि वा।
अभ्यासात् सिद्धिमाप्नोति
सर्व योगेष्व तन्द्रितः॥

अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री और शूद्रों को पवित्र करने वाला इनके प्रारब्ध कर्मों को मिटाने वाला तथा मुक्ति को देने वाला योग के बिना और कोई नहीं है।

जवान-बूढ़ा, रोगी और दुर्बल क्यों न हो उसको भी सम्पूर्ण योग शास्त्र के विषयों में ध्यान रख कर अभ्यास करने से सिद्धि प्राप्त हो सकती है।

ईश-वन्दना

[श्री 'दिव्य' जी]

आओ गुण गावें ईश्वर का,
नाम जपें उस जगदीश्वर का।
जिसने सारा जगत बनाया,
कंचन-सी दी हमको काया॥

जलचर, थलचर, नभचर, तारे,
चन्दा, सूरज और सितारे।
सागर, पर्वत, नदियां, नाले,
नभ में घिर घन काले-काले॥

पल-पल जपते नाम उसी का,
खोज रहे हैं धाम उसी का।
जिसने हमको बड़ा किया है,
भूतल पर ला खड़ा किया है॥

पवन उसी को हेर रहा है,
भृङ्ग उसी को टेर रहा है।
रङ्ग उसी का लेकर तितली,
उससे ही मिलने को निकली॥

चातक में है चहक उसी की,
चन्दन में है महक उसी की।
है, कोयल में कूक उसी की,
दुखियों में है हूक उसी की॥

चम्पा, जुही, चमेली, बेला,
सब में ही है वह अलबेला।
आओ उसके ही गुण गावें,
उसको ही नित शीश-नवावें॥

हैं हम सब उसके ही नन्दन।
आओ कर लें उसको वन्दन॥

भर्तृहरि महाराज को वैराग्य-प्राप्ति

[श्री विष्णुदत्त शर्मा, एम.एस-सी., एम.टी.एस. (जापान)]
बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय

प्रकृति पर्यन्त समस्त पदार्थ चाहे वे चर हों या अचर काल की प्रेरणा से प्रेरित होकर प्रतिपल कोई उत्थानकी एक निर्धारित सीमा की ओर अग्रसर होता है वहीं कोई पतन की एक निश्चित गहराई की ओर गिरता रहता है ! जन्म और मृत्यु का भी यही सिद्धान्त है ! संसार में त्रय गुणों के प्रभाव से पुण्य और पाप का भागी होकर मानव सुख एवं दुःख के काल्पनिक जगत में भ्रमित होता रहता है और उपरोक्त क्रिया की पुनरावृत्ति तब तक होती रहती है जब तक कि मानव को आत्म-ज्ञान सुलभ नहीं हो जाता ! इसीलिये अहंकार आदि की सत्ता का त्रयकालिक अभाव ही मोक्ष है ऐसा योगवासिष्ठ में भगवान राम को उपदेश देते हुये महाराज वशिष्ठ जी ने उल्लेख किया है :—

नाहं मित्थैव निर्वाणं किमेतावति मूढ़ता ।
सत्सङ्गमविचाराभ्या मेतदाश्वधिगम्यते ॥

—योग वाशिष्ठ

इसीलिए सुख की भौतिक चरम सीमा (काम, अर्थ, यश इत्यादि से उत्पन्न होने वाले भौतिक आनन्द) प्राप्त करने के पश्चात् ज्ञानी मुमुक्षुजन एकाएक खिन्न हो उठते हैं क्योंकि इन भौतिक साधनों से प्राप्त आनन्द क्षणिक हुआ करता है और इस आनन्द की घड़ी को चिरस्थायी नहीं बनाया जा सकता। अतः परमानन्द की प्राप्ति के लिये राजा हो चाहे रंक सभी को एक न एक दिन संत-चरणों का अनुग्रह प्राप्त करना ही पड़ता है। कीर्ति, राज्योपभोग तथा नाना प्रकार की क्रीड़ाओं में रत राजाओं ने भी अनन्त सुख की प्राप्ति के लिये अपने भौतिक सुखों को त्यागकर संत-चरणों का आश्रय ग्रहण किया है। इन संतों की कृपा भी तो विलक्षण हुआ करती है महाराजा भर्तृहरि पर किस प्रकार से नाथों के नाथ योगाचार्य श्री गोरक्षनाथ जी की कृपा-दृष्टि हुयी यह भी एक अत्यन्त अनोखी घटना है जिसका उल्लेख ही इस लेख का मुख्य उद्देश्य है।

एक बार महाराजा भर्तृहरि अपने अनुचरों के साथ घनघोर

जंगल के ऊबड़खाबड़ कंटकाकीर्ण रास्ते की अवहेलना करते हुये द्रुतगामी अश्वों पर आरूढ़ राजमहल की ओर लौट आ रहे थे। घोड़े की पीठ पर आखेटमें बंधा हुआ तरुण हरिण लाद कर महाराजा भर्तृहरि निश्चिन्तता से घोड़ा दौड़ाये जा रहे थे। हरिणियों का विशाल समूह बार-बार अश्वारोहियों के मार्ग को रोकने का असफल प्रयास कर रहा था। दौड़ती हुयी हरिणियाँ याचनामय दृष्टि से राजा की ओर बार-बार देखती हुयी मानो कह रही थी कि हे राजन्! या तो हमारे प्राणनाथ को सजीव कर छोड़ दो अन्यथा हमारे भी प्राणों का हरण कर प्रिय मृग के साथ ही हमारी यात्रा भी समाप्त कर दो।

मूक अभ्यर्थना कभी खाली नहीं जाती। ईश्वर इसे पहले सुना करता है। दैवयोग से श्री गोरक्षनाथ जी उसी मार्ग से नगर की ओर जा रहे थे जिससे अश्वारूढ़ महाराजा भर्तृहरि अग्रसर हो रहे थे। अन्तर्दृष्टि-सम्पन्न श्री गोरक्षनाथ जी ने हरिणियों से घिरे हुये महाराजा भर्तृहरि को सम्बोधित करके कहा—ऐ राजन्! तुम इस कठिन निष्ठुर कर्म में कैसे प्रवृत्त हुये? ऐसा कृत्य तुम्हें शोभा नही देता। यदि तुम्हारे प्राणों को कोई हर ले तो सोचो उन अनेक रानियों की क्या दशा होगी। क्या ऐसा होने से उनके लिये आमोद-प्रमोद से भरा हुआ संसार अंधकारमय नहीं प्रतीत होगा? वही दशा इन हरिणियों की हो रही है और तुम इस कर्म के हेतु तनिक भी द्रवीभूत नहीं हो रहे हो। ऐसा सुनकर महाराजा भर्तृहरि ने कहा महात्मन्! आखेट तो राजाओं का स्वाभाविक कृत्य है। अतः मेरा इस हरिण का वध करना अनुचित कैसे होगा। तब मुस्कराते हुये गोरक्षनाथ जी ने कहा उचित और अनुचित क्या है? इस पर हम विवाद नही करना चाहते परन्तु जिसमें जीवन दान करने का का सामर्थ्य नहीं उसे किसी भी जीव का जीवन छीनने का भी कोई अधिकार नहीं है। ये दोनों क्रियायें सर्वथा ईश्वराधीन है! महाराजा भर्तृहरि जी विनम्रता से प्रार्थना करते हुये बोले स्वामी अब मैं कर भी क्या सकता हूं। यदि आप इस मृतक मृग को सजीव कर दें तो हम इस कुकृत्य एवं मानसिक ग्लानि से मुक्त हो जावेंगे। इस पर उच्च स्वर से श्री गोरक्षनाथ जी ने कहा मृग को घोड़े से नीचे डालो हम इसमें पुनः जीवन दान करते हैं। सेवकों ने मृग को मुक्त करके पृथ्वी पर डाल दिया। योगिराज श्री गोरक्षनाथजी ने सजीव मंत्रका उच्चारण कर थोड़ी सी मृत्तिका उस निर्जीव मृग पर डाल दी, जिससे तुरन्त ही मृग जीवित हो चकपकाते हुये इधर-उधर दृष्टि डाल कर उठ खड़ा हुआ तथा हरिणियों के झुण्ड में मिल कर देखते-देखते घनघोर अरण्य में तिरोहित हो गया। योग की इस अद्भुत शक्ति को देख कर सभी आश्चर्य चकित रह गये और राजन बार-बार श्री नाथ जी से प्रार्थना करने लगे कि इस अद्भुत शक्ति का मुझ में भी प्राकट्य प्रदान करें। परन्तु हर वस्तु प्राप्त करने की

एक सुनिश्चित अवधि हुआ करती है। अभी वह समय नहीं आया था। अतः श्री नाथ जी ने महाराजा भर्तृहरि को आश्वासित करते हुये कहा कि समय आने पर मैं स्वयं उपस्थित होकर तुम्हें योग-दीक्षा प्रदान कर दूंगा।

समय व्यतीत होता गया परन्तु जब-जब जंगल में घटी घटना एवं श्री नाथजी के दिव्य स्वरूप का स्मरण महाराज भर्तृहरि को होता उस समय वे खिन्न चित्त हो उठते थे। राज्य का वैभव एवं रानियों का हास-विलास भी बहुत ही क्षुद्र अनुभव होता था। मनुष्य को अपने अहंकार एवं वासनामय चित्त का जब ज्ञान हो जाता है तब वह संसार को असत् समझने लगता है। वैराग्य-मय भाव न होने के कारण ही मनुष्य प्रमाद-वश अनेक कर्मों में लिप्त होकर भारी यातनाओं को सहता रहता है। जिस समय सन्त-कृपा से मोह का बन्धन नष्ट हो जाता है उस समय मृग मरीचिका रूपी जगत सुख के पीछे मनुष्य बावला बना नहीं दौड़ता फिरता। वह सत्यज्ञानको प्राप्त कर निरन्तर अभ्यास से अपने वैराग्य को पुष्ट करता रहता है इधर सती साध्वी परम योगिनी महारानी पिङ्गला ने एक बार प्रसंगवश महा-राजा भर्तृहरि से कहा कि महाराज वे स्त्रियाँ जो पति की मृत्यु के पश्चात् जीवित रहती हैं तथा अग्निदाह द्वारा प्राण छोड़ती है सती नहीं कहला सकती। सती वह नारी है जो पति की मृत्यु का समाचार पाते ही देह त्याग दे। मन ही मन महाराजा भर्तृ-हरि ने पिङ्गला की परीक्षा लेने की सोची। और दूसरे दिन नगर-पर्यटन से लौटते समय सर्पदंश से अपने को मृतक होने की सूचना एक दूत से राजमहल में भिजवायी। दूत राज द्वार पर रोता हुआ पहुंचा तथा रानी की सखियों द्वारा रनिवास में राजा की आक-स्मिक अकाल मृत्यु का समाचार पहुंचवा दिया। महारानी पिङ्गला समाचार सुनते ही आसन लगा कर बैठ गयीं तथा इस तथ्य को जान कर भी कि राजा ने उनके पातिव्रत धर्म की परीक्षा ली है उन्होंने पति की ही इच्छा को अपना धर्म समझ करके प्राणों के संगम द्वारा शरीर छोड़ दिया। उधर राजा को ऐसा प्रतीत हुआ कि कहीं रानी सचमुच त्याग न कर दे, इसलिए वे शीघ्रता से नगर की ओर चले। नगर के समीप ही उन्होंने महारानी पिङ्गला की जल रही चिता को देखा। सती साध्वी का महान वियोग महा-राजा भर्तृहरि सहन न कर सके। वस्त्रा-भूषणों को विक्षिप्त पुरुषों की भाँति फेंक कर चिता की ओर विलाप करते हुये आगे बढ़े। सामन्त मंत्रीगण तथा गणमान्य पुरुषों ने अनेक प्रकार से महाराजा को धैर्य बंधाया परन्तु उनका एक ही उत्तर रहता था कि अब मेरा राज्य से कोई प्रयोजन नहीं मैं इसी श्मशान में रहूंगा।

दिन व्यतीत होते गये परन्तु रानी पिङ्गला की पति-भक्ति एवं सहवास के सुखों को स्मरण कर महाराजा भर्तृहरि नितनतन वियोग को प्राप्त होते रहे। पागलों की सी

दशा में पिङ्गला पिङ्गला कह कर विलाप करते थे। ऐसी ही अवस्था में एक दिन एक भिक्षुक श्मशान से गुजरता हुआ महाराजा भर्तृहरि से कुछ दूर आकर अपने खप्पर को जमीन पर गिरा कर जोर-जोर से रोने लगा। और नाटकीय ढंगसे दीर्घ स्वरमें-मेरा खप्पर-मेरा खप्पर कहता हुआ विलाप करने लगा। महाराजा भर्तृहरि ने उस ओर ध्यान दिया और तत्पश्चात् उस भिक्षुकसे बोले ऐ भिक्षुक इस मृत्तिका-पात्र के लिये क्यों इतना विलाप करता है? जा नगर में जाकर दूसरा पात्र ले ले। भिक्षुक बोला राजन्! इस खप्पर ने मुझे चिरकाल से सुख दिया है। अतएव इसके नष्ट होने से ही मैं दुःख को प्राप्त होकर विलाप कर रहा हूं। यदि आप इसे ही पूर्ववत् रूप से मुझे देने में समर्थ हों तो मैं विलाप न करूं। महाराजा बोले भिक्षुक यह असंभव है। क्योंकि मृत्तिका का यह टूटा पात्र पुनः निर्मित नहीं किया जा सकता। भिक्षुक बोला तब आप अपना कार्य करें मुझे विलाप करने दें। यदि आपको एक पिङ्गला का दुःख है तो मुझे भी इस पात्र-विनाश का महान् दुःख है। राजा कुछ क्रोधित होते हुये बोले-ऐ भिक्षुक महारानी पिङ्गला की तुलना तू अपने पात्र से करता है। मैं तुझे स्वर्ण पात्र दिलवाता हूं तू इस पात्र के हेतु विलाप मत कर। भिक्षुक मुस्कराता हुआ बोला राजन! मुझे तो यही पात्र चाहिये। स्वर्ण पात्र से मेरा क्या प्रयोजन। आप चाहें तो मैं दस पिंगला उत्पन्न कर सकता हूं जिसमें से आप अपनी पिङ्गला को प्राप्त कर प्रसन्न होंगे। आश्चर्य-चकित होते हुये महाराजा भर्तृहरि ने इस विषय में अपनी स्वीकृति प्रदान की। देखते ही देखते योग माया से उस भिक्षुक ने कई पिङ्गला उत्पन्न कर दीं जो सभी एकसी प्रतीत हो रही थीं। प्रत्यक्ष अनेकों पिङ्गला देखकर महाराजा भर्तृहरि का चित्त भ्रमित हो गया तथा वे निर्णय न कर सके कि चिरकाल की संगिनी उनकी पिङ्गला कौन सी है? निर्णय हेतु ज्यों ही उन्होंने भिक्षुक की ओर देखा वहीं योगिराज श्री गोरक्षनाथजी को पाया। महाराजा भर्तृहरि श्री नाथ जी के चरणों में गिर पड़े। श्री गोरक्षनाथ जी ने बड़े स्नेह से राजा को उठाकर हृदय से लगा लिया तथा राजाको तत्त्व-ज्ञानका उपदेश देकर पिङ्गला-जनित मोह को नष्ट कर दिया। महाराज भर्तृहरि शरीर धर्म के गूढ़ रहस्य को भली प्रकार समझ चुके थे। अब भोग-वासना संबंधी नाना प्रकार के छल भी उनको छल सकने में समर्थ नहीं थे क्योंकि उनमें पूर्ण वैराग्य भाव उदय हो चुका था। वे नश्वर शरीर के असत् व्यवहार को जानकर पुनः उसी दावाग्नि में दहित होना नहीं चाहते थे। इसलिये योग-दीक्षा-हेतु दीन भाव से श्री गोरक्षनाथ जी से प्रार्थना करने लगे। श्री नाथ जी ने उन्हें अमोघ योग-विद्या प्रदान की जिसके अभ्यास से वे कुछ काल में ही पूर्ण योगविद् बन गये।

—×०×—

कुछ प्रश्न और उनके उत्तर

[पूज्यपाद श्री गुरुदेवजी के सौजन्य से]

एक साधक ने लिखा है:—

प्रश्नः—महाराज जी कृपा करके आप शास्त्रीय ढंग से योग की परिभाषा समझाइये ? आजकल संसार में देखने में आता है जो लोग थोड़े से आसन, बन्ध, मुद्राओं को सीख करके छोटी-छोटी व्यायामशालायें खोल लेते है, वह अपने आपको योगी एवं योगाचार्य आदि ऊँचे शब्दों से सम्बोधित कराते हैं। इसके अतिरिक्त जो लोग भांग-सुल्फा और गांजा आदि नशीले पदार्थ पीते हैं और प्रातः काल से लेकर सायं काल तक नशे की नींद में सोये रहते हैं वे भी अपने लिये योगी योगिराज आदि शब्दों का व्यवहार कराते है, यदि उनसे कोई कहे कि महाराज कोई योग की बात बतलाइये या कोई योग की शिक्षा दीजिये तो वे लोग उत्तर देते हैं वाह ! वाह !! हम योगी अगड़ बम्म बम्भेनी दुनिया मूडेंगे हम। यदि उनसे कहें कि महाराज आप यह भांग, धतूरा सुल्फा, गांजा आदि पीते हैं ऐसा तो नहीं करना चाहिये तो वे लोग कहते हैं—वाह-वाह रे तू क्या जानता है 'हमारी ताकत को। चिलम चमेली फूंक दे ठेकेदार की हवेली' यही उनके काव्य व मंत्र है। यदि उनसे कहें महाराज मंत्र बतलाइये ? तो वे कहते हैं—सुन भाई मंत्र 'कानावाली कुर्द तू चेला मैं गुरु' ! महाराज जी ! बड़ा भारी गोरखधन्धा है। हमारी तो ठीक समझ में ही नहीं आता कि योगी किसको कहते है ? जगह-जगह देखने में आता है बड़े बड़े अच्छे पढ़े-लिखे विद्वान भी योग से घृणा करते दिखलाई देते हैं कदाचित कहीं भक्त समुदाय में योग की बात चलती है तो वे लोग भी योग को कष्टों की विद्या बतला कर अपने भक्ति भाव को सही मानते हैं। "कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।" इसलिये कृपा करके योग की परिभाषा समझाइये ? ताकि हम सब यह जान तो लें कि वस्तुतः योग का सत्य स्वरूप क्या है ?

उत्तरः—योग की परिभाषा भगवान् पतंजलि देव ने स्वयं अपने मुखारविन्द से कही है उन्होंने कहा है:—

योगश्चित्त वृत्ति निरोधः

अर्थात् चित्त वृत्ति निरोधयो योगः यानी नितराम रोधः निरोधः चित्त वृत्तियों का सीमा तक पहुंच करके रुक जाना गुणों का गुणों में अवस्थान हो जाना और आत्मा का केवली भाव को प्राप्त हो जाना ही योग है। दूसरे औपनिषदिक परिभाषा में योगः समाधिः समाधि र्वे: योगः योग नाम समाधि का है। समाधि

को ही योग कहते है। 'समाधि-समतावस्था जीवात्म परमात्मनः' जीवात्मा परमात्मा की एकावस्था को ही समाधि कहते हैं जिस समय जीव अपने बुद्धि-बोध स्वरूप को छोड़कर के अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है वही उसकी स्वीयास्वरूप स्थिति है और उसीका नाम योग है।

प्रश्नः—क्या योगाभ्यास करने वाले योगी को कोई आनन्द आता है? और वह आनन्द कैसा होता है? क्या वह आनन्द भक्ति में आनेवाले आनन्द से अधिक होता है? कृपया महाराज जी! उस आनन्द के स्वरूप को भी बतलाइये?

उत्तरः—हां, योगी को बहुत बड़ा आनन्द आता है और वह आनन्द इतना बड़ा होता है जिसको प्राप्त करके और कुछ प्राप्त करना शेष नहीं रहता।

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥

वह आनन्द इतना बड़ा होता है जिसको पाकर योगी महान्-से-महान् दुःख आने पर भी अपने ध्येय से विचलित नहीं होता। इसलिये योगी को जो आनन्द आता है वह बहुत बड़ा आनन्द होता है। वह केवल योगी को ही उपलब्ध होता है। भक्ति- भाव से आराधना करने वाले भक्त लोग जब ईश्वर को आत्मनिवेदन करते हैं तो ईश्वर के अनुग्रह को पा करके उनका भी योग में प्रवेश हो जाता है और शनैः-शनैः समाधि-सिद्धि होने लगती है और इस रुहानी आनन्द को प्राप्त होने लगते है। जैसे—नरसी मेहता, गोस्वामी तुलसीदास, मीराबाई आदि ऊंचे-ऊंचे भक्तात्मा हुए, उन्होंने अन्तर्मुखता को प्राप्त कर ही अपने आपको कृतार्थ बना लिया। योगदर्शन बतलाता है:—

'समाधिसिद्धिरीश्वर प्रणिधानात्।'
ईश्वर प्रणिधानात् भक्ति विशेषादावर्जितः
ईश्वरः तमनुगृणाति इदं अस्याभिमतः अस्तु

अर्थात् भक्ति विशेष से आवर्जित किया हुआ, (सामने किया हुआ) ईश्वर भक्त पर यह कृपा करता है कि उसे उसकी यह अभीष्ट वस्तु अर्थात् समाधि की प्राप्ति हो जाय, तब भक्तों को भी समाधि होने लगती है। यह ऋत नितांत-सत्य बात है कि संसार में किसी भी सिद्धान्तया मजहब का माननेवाला हो जब तक उसे योग नहीं आता तब तक उसको आनन्द प्राप्त नहीं होता। इसलिए आनन्द का श्रोत योग से ही बहता है।

मुक्ति का स्वरूप

[श्री सूर्यप्रसाद जी उपाध्याय]

भारतभूमि प्राचिकाल से ही मुक्ति स्थान मानी जाती है। जितने भी संत-महात्मा इस पुण्य धरती पर अवतरित हुये, उनका प्रधान लक्ष्य मुक्ति प्राप्त करना ही था। उन्होंने उसी की प्राप्ति का चरम लक्ष्य मनुष्य के समक्ष उपस्थित किया। शताब्दियाँ ही नहीं अपितु सहस्राब्दियाँ व्यतीत हुईं, मुक्ति को खोज करते, परन्तु मानव अभी तक उसके स्वरूप को भली प्रकार नहीं पहचान सका। अभिप्राय यहाँ मेरा जन साधारण से है न कि, ज्ञानी, त्यागी, समाधिनिष्ठ संतों से, जिन्होंने अपनी तपश्चर्या द्वारा परम लक्ष्य की प्राप्ति कर ली। कुछ ने तो उसे अपने तक ही सीमित रक्खा, कुछ ने उसे जन साधारण तक पहुंचाने की चेष्टा की।

उनके भाव व्यक्त करने की प्रथा भिन्न है। भिन्न-भिन्न रूप से ज्ञानी संतों ने मुक्ति की प्राप्ति बतलायी है। सर्व प्रथम विचारणीय विषय यह है कि वास्तव में मुक्ति है क्या? मुक्ति शब्द का शाब्दिक अर्थ होता है छुटकारा। किससे छुटकारा पाना। उत्तर प्राप्त होता है संसार के आवागमन से। क्यों? गोस्वामी जी ने लिखा है—

जन्मत मरत दुसह दुख होई।

अर्थात् जन्म लेते समय तथा मरते समय असहनीय कष्ट होता है। परन्तु कितने महात्माओं ने यहाँ तक कि गीता में भी स्वयं आनन्दकन्द भगवान कृष्ण ने कहा है—

न जायते म्रियते वा कदाचिन्।

अर्थात् आत्मा 'अविनाशी' 'अनश्वर' तथा अजन्मा है। जब यहीं कई प्रकार के भ्रम पैदा हो जाते हैं तब पूर्ण रीति से निर्णय कर पाना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।

मुक्ति के पूर्व यह विचार करना अनुचित न होगा कि जिस वस्तु से हम छुटकारा पाने का सतत प्रयत्न करते हैं वह वस्तु है क्या? अन्तर से यही ध्वनि निकलती है कि बन्धन अर्थात् कोई एक ऐसा अटूट बन्धन है जिससे छुटकारा पाने हेतु मानव व्यग्र रहता है। वह बन्धन क्या है? उसका स्वरूप कैसा है? यह विषय विचारणीय है।

भारतीय दर्शनों की एक विशेषता यह भी है कि वे अज्ञान को

बन्धन का कारण मानते हैं, अर्थात् तत्त्वज्ञान के अभाव से ही शरीर बन्धन होता है और दुःखों की उत्पत्ति होती है। इनसे मुक्ति तभी मिल सकती है जब संसार तथा आत्मा का 'तत्त्व-ज्ञान' प्राप्त हो। पुनः-पुनः जन्म ग्रहण करना तथा जीवन के दुःखों को सहना ही मनुष्य के लिये बन्धन है। पुनर्जन्म की सम्भावना का नाश मोक्ष से ही हो सकता है जैनमत, बौद्धमत, सांख्य तथा अद्वैत वेदान्त के अनुसार मोक्ष की प्राप्ति जीवन के रहते भी हो सकती है। अर्थात् यथार्थ सुख जीवन काल में भी प्राप्त हो सकता है।

बन्धन से मोक्ष प्राप्त करने की जो शिक्षा दी गयी है उसका तात्पर्य यह नहीं कि हम संसार से पराङ्मुख होकर केवल पर लोक चिन्ता में ही लगे रहें। वरन् इसका तात्पर्य यह है कि इहलोक तथा इहकाल को अधिक महत्त्व न दें। अपनी दृष्टि को केवल इस लोक में सीमित न रक्खें और अदूरदर्शिता से बचें।

जीवन के आदर्श को प्राप्त करने के लिये एकाग्र चिन्तन तथा ध्यान की इतनी अधिक आवश्यकता है कि भारतीय दर्शन में इनके लिये एक बड़ी साधन-पद्धति का विकास हुआ है। इस पद्धति का विस्तृत वर्णन योग दर्शन में मिलता है। किन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिये कि इसका वर्णन केवल योग दर्शन में ही पाया जाता है। बौद्ध जैन सांख्य, वेदान्त तथा न्याय-वैशेषिक दर्शनों में भी इसका वर्णन किसी न किसी रूप में पाया जाता है। केवल कोरे तत्त्व ज्ञान से ही अज्ञान (बन्धन) का नाश नहीं होता। भ्रान्त संस्कार-वश दैनिक जीवन बिताने के कारण हमारा अज्ञान और बद्धमूल हो जाता है। इसलिए हमारे विचार वचन तथा कर्म अज्ञान के रंग में रंग जाते हैं। फल यह होता है कि विचार वचन तथा कर्म से पुष्ट होने के कारण अज्ञान और भी दृढ़तर होता जाता है। ऐसे प्रबल अज्ञान का निराकरण करने के लिये तत्त्व ज्ञान का निरन्तर अनुशीलन आवश्यक है।

अतः जब तक तृष्णाओं तथा नीच प्रवृत्तियों पर पूर्ण रूपेण नियंत्रण न हो तब तक हमारे कर्म सर्वथा नैतिक या धार्मिक नहीं हो सकते। इस विचार को चार्वाक के अतिरिक्त और सभी भारतीय दर्शन मानते हैं। ठीक ही कहा है :—

> जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः,
> जानाम्य धर्मं न च मे निवृत्ति।

चार्वाक जड़वादी है। उसके अनुसार प्रत्यक्ष ही एकमात्र प्रमाण है। अनुमान शब्द आदि जितने अप्रत्यक्ष प्रमाण हैं सभी अमान्य तथा भ्रम मूलक हैं। प्रत्यक्ष के द्वारा हमें भौतिक जगत का ज्ञान मिलता है। चार भौतिक तत्त्वों का ज्ञान हमें इन्द्रियों द्वारा ही होता है। आत्मा के तत्त्व के लिये कोई भी प्रमाण उनके यहाँ नहीं है। उनके इन विचारों से ईश्वर की आराधना तथा मोक्ष की कामना सभी व्यर्थ है।

जैन दर्शन भी यही मानता है कि हमारे

तीर्थङ्करों ने जो उपदेश दिया है वही प्रमाण है। ईश्वर की सत्ता उनकी दृष्टि में कुछ भी नहीं है। केवल उनके चौबीस तीर्थङ्करों के वचन ही सब कुछ हैं।

बौद्ध दर्शन ने जिन चार आर्य सत्यों को ढूंढा, वह यह है—(१) दुःख है। (२) दुःख का कारण है। (३) दुःख का अन्त है। (४) दुःख दूर करने का उपाय है।

वे मानते हैं कि संसार में सभी वस्तु परिवर्तनशील हैं इस प्रकार 'जरा-मरण' का भी कारण है। हमारे जन्म का कारण हमारी तृष्णा है। जो हमें सांसारिक विषयों की ओर खींचती है। इसका कारण हमारा अज्ञान है। जब हमें इस क्षणिक सुख-दुःख का ज्ञान हो जाय तब हमारा पुनर्जन्म न हो, और इस तरह दुःखों का अन्त हो जाय।

'न्याय दर्शन' का लक्ष्य आत्माको शरीर, इन्द्रियों तथा सांसारिक विषयों के बन्धन से मुक्त करना है। आत्मा, शरीर और मन से भिन्न है। 'मन' में एक अणु है जो सूक्ष्म नित्य तथा अविभाज्य है। मन परमाणु के सदृश सूक्ष्मतम है किन्तु आत्मा, विभु, अमर तथा नित्य है। मिथ्या-ज्ञान, राग-द्वेष तथा मोह के कारण आत्मा को दुःख ग्रस्त होना पड़ता है। उन्हीं के कारण उसे जन्म-मरण के चक्कर में पड़ना पड़ता है। तत्वज्ञान के द्वारा जब दुःखों का अन्त होता है तो मुक्ति प्राप्त होती है।

वैशेषिक दर्शन गुण और धर्म को ही प्रधान मानता है। ईश्वर तथा मोक्ष के विषय में वैशेषिक तथा न्याय में पूर्ण साम्य है।

सांख्य दर्शन द्वैतवादी—यह दो तत्वों से सृष्टि-रचना को मानता है, प्रकृति एवं पुरुष। ज्योंही हम पुरुष का शरीर, इन्द्रिय, मन, अहंकार तथा बुद्धि से भेद समझने लगते हैं त्योंहीं हमारे सुखों तथा दुःखों का अन्त हो जाता है। तब पुरुष का संसार के साथ कोई अनुराग नहीं रहता और यह संसार के घटना-चक्र का साक्षी या द्रष्टा रह जाता है। इस अवस्था को मुक्ति या कैवल्य कहते हैं।

महर्षि पतंजलि योगदर्शन के प्रवर्तक हैं। योग तथा सांख्य में बहुत अधिक साम्य है। योगदर्शन का प्रमुख विषय योगाभ्यास है। सांख्य के अनुसार मोक्ष-प्राप्ति का प्रमुख साधन विवेक ज्ञान है। विवेक ज्ञान की प्राप्ति प्रधानतः योगाभ्यास से ही हो सकती है। योग चित्त-वृत्ति के निरोध को कहते हैं।

योग दो प्रकार का होता है—संप्रज्ञात तथा असंप्रज्ञात। संप्रज्ञात उस योग या समाधि को कहते हैं, जिसमें चित्त ध्येय विषय में पूर्णतया तन्मय हो जाता है। जिस से चित्त को उस विषय का पूर्ण तथा स्पष्ट ज्ञान होता है। असंप्रज्ञात उस योग को कहते हैं जिसमें मन की सभी क्रियाओं का निरोध हो जाता है। फलस्वरूप ध्येय विषय के साथ अन्य सभी ज्ञान का लोप हो जाता है।

योग के आठ अंग—यम, नियम, आसन,

प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि है।

इसमें मुझे केवल दो विषयों पर ही कुछ प्रकाश डालना है। किसी विषय का सुदृढ़ तथा अविराम चिन्तन ध्यान कहलाता है। समाधि चित्त की वह अवस्था है जिसमें ध्यानशील चित्त ध्येय विषय में तल्लीन होकर आत्म-विस्मृत हो जाता है।

अतः ध्यान और समाधि के द्वारा ही मनुष्य चरम लक्ष्य मुक्ति के द्वार तक पहुंच सकता है। अन्य मार्ग से नहीं। महर्षि पतंजलि जी ने कहा है:—

ततः क्लेश कर्म निवृत्तिः

अर्थात् उस धर्ममेघ समाधि से क्लेश और कर्मों की निवृत्ति होती है। उस धर्ममेघ समाधि की प्राप्ति होने पर अविद्या आदि क्लेश और शुक्ल, कृष्ण तथा मिश्रित तीनों प्रकार के कर्म (सकाम कर्म) और उनकी वासनायें मूल सहित नाश हो जाती हैं। इस प्रकार कर्मों और क्लेश के अभाव में योगी जीवन्मुक्त होकर विचरता है और शरीर त्यागने के पश्चात् विदेह मुक्त पद को प्राप्त होता है।

अर्थात् पुनः जन्म धारण नहीं करता जैसा कि भाष्यकार ने लिखा है:—

'कस्माद् यस्माद्विपर्ययो भवस्य कारणं न हि क्लेश विपर्ययः कश्चित् केन चित्क्वचिज्जातो दृश्यत इति।'

क्योंकि विपर्यय ज्ञान अर्थात् अविद्या ही संसार का कारण है। इसलिये जिसके अविद्यादि क्लेश नष्ट हो गये हैं ऐसा पुरुष कोई भी किसी कारण से भी कहीं भी उत्पन्न हुआ नहीं देखा जाता। महर्षि गौतम ने भी न्याय दर्शन में ऐसा ही कहा है:—

'वीत रागजन्मा दर्शनात्'

(३।१।२५)

जिसके राग बीत गये हैं ऐसे पुरुष का संसार में जन्म न देखे जाने से ही सिद्ध होता है। पुनः प्रश्न भी उठता है क्लेश कर्म की निवृत्ति पर क्या होता है

तदा सर्वावरण मलापेतस्य ज्ञानस्यानन्त्याज्ज्ञेयमल्पम्।

चित्त सत्त्व प्रधान सूर्य के सदृश प्रकाशशील है। जिस प्रकार शरद ऋतु में मेघ सूर्य के प्रकाश को ढक लेते हैं उसी प्रकार रजस तमस मूलक अविद्या आदि क्लेश और सकाम कर्म की वासनायें चित्त के प्रकाश पर आवरण डाले हुये हैं। बादलों के हट जाने पर सूर्य का प्रकाश चारों दिशाओं में फैल जाता है।

इसी प्रकार धर्ममेघ समाधि द्वारा क्लेश और कर्म वासनाओं के मल का पर्दा चित्त से हट जाता है तो उसके अपरिमित प्रकाश में कोई वस्तु छिपी नहीं रहती। इस पर एक छोटा सा दृष्टान्त है:—

अन्धो मणिमविध्यत्तम-
नङ्गुलिरावयत्।

अग्रीवस्तं प्रत्यमुञ्चत्तम

जिह्वोऽभ्यपूजयत्।

अन्धे ने मणियों को बींधा। बिना अङ्गुली वाले ने उसमें धागा पिरोया। ग्रीवारहित के गले में वह डाली गयी और जिह्वारहित ने उसकी प्रशंसा की। जिस प्रकार यह वाक्य आश्चर्य रूप जान पड़ता है ऐसे ही आश्चर्य रूप दशा योगी की इस काल में होती है।

अतएव, प्रत्येक साधक को गुरुदेव द्वारा बतलाये हुये मंत्रों का अविरल जप ध्यान तथा गुरु श्रद्धा और भक्ति में अविचल आस्था रख कर योग मार्गपर अग्रसर होना चाहिये। ऊपर बतलाये मार्ग मानव को मुक्ति द्वार तक अवश्य पहुंचा देंगे।

लक्ष्मण जी का निषाद राज को उपदेश

काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत करम भोग सबु भ्राता॥
जोग वियोग भोग भल मन्दा। हित अनहित मध्यम भ्रम फन्दा॥
जनमु मरनु जहँ लगि जग जालू। सम्पति बिपति करमु अरु कालू॥
धरनि धामु धनु पुर परिवारू। सरगु नरकु जहँ लगि ब्यवहारू॥
देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माहीं। मोह मूल परमारथ नाहीं॥

सपनें होइ भिखारि नृप रंकु नाकपति होइ।
जागें लाभु न हानि कछु तिमि प्रपंच जियँ जोइ॥

मोह निसाँ सब सोवनिहारा। देखिअ सपन अनेक प्रकारा॥
एहिं जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच बियोगी॥
जानिअ तबहिं जीव जग जागा। जब सब बिषय बिलास बिरागा॥
होइ बिबेकु मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथ चरन अनुरागा॥
सखा परम परमारथु एहू। मन क्रम बचन राम पद नेहू॥

—तुलसीकृत रामायण से

आत्म-विकास और योग

[श्री सोमदत्त शर्मा बी. ए. बी-एड., सालवन (करनाल)]

समस्त प्राणियों में आत्मा और शरीर दो वस्तुएं विद्यमान हैं। आत्मा और शरीर का बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। किसी शरीर की उन्नति या अवनति उसकी आत्मा की उन्नति या अवनति पर निर्भर करती है। स्थूल शरीर वाले साधारण व्यक्तियों का अपने कुटुम्ब के सदस्यों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता जब कि मुट्ठी भर के शरीर वाले व्यक्ति लाखों की सभा को सम्बोधित करके अपने विचारों से सबको प्रभावित कर लेते हैं यह उनकी आत्मा का बल है उनकी आत्माका तेज है, संसार आवागमनका चक्र है, धूप तथा छाया की भांति सुख-दुःख भोगता हुआ प्राणी संसार में आता है और चला जाता है। कुछ दिनों के पश्चात् ही संसार के व्यक्ति उसको भूल जाते हैं। परन्तु कुछ ऐसी महान विभूतियाँ होती हैं जिनको सांसारिक व्यक्ति हजारों और लाखों वर्षों तक भी स्मरण करते रहते हैं। उनके गुण गाते हैं तथा उनकी पूजा करते हैं। यह उनकी आत्मा का बल है उनकी आत्मा का तेज है, उनकी आत्मा विकसित है जिसके फल-स्वरूप वह शरीर से मृत होकर भी कीर्ति से जीवित रहते हैं।

अब हमें यह विचार करना है कि आत्मा का हनन क्यों होता है उसके विकास की गति क्यों अवरुद्ध हो जाती है और व्यक्ति क्यों अधोमुखी होकर गिरता चला जाता है ? इसके कुछ कारण स्पष्ट हैं।

मिथ्या आहार-विहारः—हमारी आत्मा के विकास में बाधक सब से अधिक हमारा आहार-विहार है। मनुष्य जिस प्रकार का अन्न खाता है, उसके मन तथा मस्तिष्क पर उसी प्रकार का प्रभाव पड़ता चला जाता है। हमारा हृदय एक उज्ज्वल श्वेत-वस्त्रकी भांति है और अन्न रंग की भांति है। यदि हमारा अन्न सात्विक और शुद्ध होगा तो हमारे मन की पवित्रता बढ़ती चली जायगी। हमारा हृदय रूपी कमल खिलता चला जायगा। हमारी सात्त्विक प्रवृत्तियाँ ऊपर उठती चली जायगीं। यदि हमारा अन्न विकृत होगा तो हमारे मन पर भी विकृत प्रभाव पड़ेगा। गुरु नानकदेव जी का उदाहरण हमारे सामने स्पष्ट है। एक समय वह अपनी यात्रा के मध्य किसी

निर्धन व्यक्ति के घर जिसका नाम भाई लालो था जाकर ठहरे। उस घर में उन्होंने रूखा-सूखा भोजन ग्रहण किया। उसी समय में किसी धनाढ्य व्यक्ति के यहां से गुरुजी को पकवान आया परन्तु उन्होंने उसके पकवान को न खाकर एक ओर कर दिया। जब किसी ने इसका कारण पूछा—तो गुरुजी ने सूखी रोटी और धनाढ्य के घर के पकवान को निचोड़ा तब गरीब की रोटी से दूध तथा धनाढ्य के पकवान से खून के कतरे निकले।

श्री प्रभु जी के जीवन चरित्र से भी इसी प्रकार की कथा का भान होता है। एक पुलिस वाले व्यक्ति की मिठाई को सेवन करने से साधकों के मन समस्त दिन विकृत रहे तथा ध्यान नहीं लगा।

शुद्ध सात्विक भोजन से मेरा तात्पर्य केवल यह नहीं है कि भोजन स्वच्छता पूर्वक ही बनाया गया हो वरन् वह पूर्ण रूप से न्यायोपार्जित पवित्र कमाई का भी हो। उसमें से अहंकार, रिश्वत या भ्रष्टाचार की दुर्गंध न आती हो।

विहार:—विहार के अन्तर्गत हमारा रहन सहन, वातावरण, संगति, मित्र,सम्बन्धी सभी आ जाते हैं। हमारे विहार की दशा आज कल शोचनीय है। नगरों और ग्रामों में शृंगार रस प्रधान नाच रंग, सिनेमा, स्वांग तथा गाने आज कल वातावरण को दूषित कर रहे हैं। सभी जगह भड़कीले और फैशनेबल पारदर्शक वस्त्र दिखाई पड़ते हैं जो छोटे-बड़े सभी के चरित्र पर दुष्प्रभाव डालते हैं। हमारे मित्र-मिलापी सभी प्राणी धन के पीछे अन्धाधुन्ध दौड़ रहे हैं। ईश्वर तथा धर्म को सर्वथा भूल बैठे हैं बीड़ी सिगरेट शराब आदि नशों की धूम है। सत्संगति का नामोनिशान तक नहीं है। ऐसे समय में हमारी आत्मा का पतन होना स्वभाविक है। मानव को जहां तक सम्भव हो ऐसे वातावरण से बचने का उपाय करना चाहिये। सत्संगति ग्रहण करनी चाहिए। संगति के विषय में कहा है:—

कबिरा संगत साधु की
ज्यों गंधी की बास।
जदपि गंधि कछु देत
नहीं तो भी बास सुबास॥
कबिरा संगत साधु की
हरे और की व्याधि।
संगत बुरी असाधु की
आठों पहर उपाधि॥

आत्मा के विकास में सुसंगति का होना अनिवार्य है।

अतः आत्म-विकास के साधनों में:—

सर्वप्रथम हमें अन्न की सात्विकता पर पूर्णरूपेण ध्यान देना चाहिए। हमारा भोजन प्रत्येक प्रकार संतुलित तथा शुद्ध होना चाहिए। द्वितीय-हमारा विहार अर्थात् संगति उत्तम पुरुषों की होनी चाहिए। उपर्युक्त दोनों बातों पर ध्यान देने और आचरण करने से हमारा उद्धार हो सकता है

धर्मः—

आहार निद्रा भय मैथुनं च
सामान्यमेतद् पशुभिर्नराणम्।
धर्मोहितेषांऽधिको विशेषो
धर्मेण हीना पशुभिः समाना॥

आज कल धर्म तथा ईश्वर के नाम की हंसी उड़ाई जाती है। मन्दिरों को कूप (धारा एकत्रित करने का स्थान) बताया जाता है। इसी से हम देखते हैं कि सभी जगह संसार में असंतोष फैला हुआ है। विद्यार्थी, व्यापारी, कृषक, राजनीतिज्ञ, कर्मचारी सभी असंतोष की आग में ग्रस्त होकर आन्दोलन के पथ पर अग्रसर हैं। इस असंतोष का कारण धर्म की भावना का लोप हो जाना ही है। हमारी जीवनचर्या से धर्म का तत्त्व मिट चुका है। हम अपने प्राचीन ग्रन्थों में पढ़ते हैं कि रामायण काल में राक्षस जाति विद्यमान थी। पढ़ने पर ज्ञात होता है कि वह ऐसा क्या कार्य करते थे—उनकी दिनचर्या किस प्रकार की थी जिस कारण उन्हें राक्षस के नाम से पुकारा जाता था। उनकी दिनचर्या आज के मनुष्य से शत् प्रति शत मिलती है। राक्षस मांस-मदिरा सेवन करते थे भ्रष्टाचारी थे, उनके जीवन में धर्म का नामोनिशान नहीं था। वे ईश्वर को विस्मृत कर चुके थे। यही अवस्था आज के मानव की है। वह मांस-मदिरा का सेवन करता है। भ्रष्टाचारी है। निज स्वार्थ-सिद्धि के लिए भाई तथा पिता की हत्या करने से भी नहीं चूकता तथा ईश्वर और धर्म को पूर्णरूपेण भूल चुका है। वह धर्म के बिना पशुओं की श्रेणी में जा चुका है।

धर्म के अन्तर्गत, सत्य भाषण ईश्वर भजन, मन की एकाग्रता, परोपकार तथा सत्संगति आती है। इन सब के सेवन से मनुष्यकी आत्माका विकास अवश्यम्भावी है।

मानव शरीर अमूल्य निधि है। चौरासी लाख योनियाँ भुगतने पर मनुष्यरूपी शरीर उपलब्ध होता है। इस चोले को प्राप्त कर अपनी आत्मा का विकास अनिवार्य रूप से करना चाहिए। सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज बार-बार अपने भाषणों में उपदेश करते हैं:—

'नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभम्।'

अर्थात् मानव शरीर बहुत कठिनता से प्राप्त होता है। यदि मनुष्य शरीर मिल जाए और भगवान् अनुकूल हवा बहा दे और कोई कर्णधार गुरु मिल जाए तो मनुष्यरूपी नैया पार हो सकती है और यदि इन सभी वस्तुओं के प्राप्त होने पर भी जो अपने को पार नहीं करता वह आत्म-हत्यारा ही है।

योग :—

आत्म-विकास के लिए सत्य-भाषण, सत्संगति का पालन, परोपकार की भावना, वृत्तियों का दमन, ईश्वर-भजन तथा मन की एकाग्रता अनिवार्य है। यह सभी बातें हमें योग-दर्शन से प्राप्त हो सकती हैं। अतः जो मनुष्य अपना आत्मोत्थान करना चाहता है। उसे योग-मार्ग में प्रविष्ट होकर मन की एकाग्रता के लिए प्रयत्न करना चाहिये। यदि हम योग-दीक्षा ग्रहण कर मन को वश में करने का प्रयत्न तथा सांसारिक द्वेष, मोह तथा दुर्भावनाओं को विस्मृत करने का प्रयत्न करेंगे तो निश्चित रूपेण हमारी आत्मा का विकास होगा।

योगेश्वर चरित्र माला

[सिद्धियों का दुरुपयोग करनेवालों को मार्ग-दर्शन]

श्री प्रभुजी नमर्दा नदी के किनारे कुछ मील जब आगे बढ़े तो एक उपयुक्त स्थान पर अपना डेरा लगाने की आज्ञा दी। वहाँ पास ही नदी के तट पर दो गाँवों के मध्य में एक महात्मा रहते थे। जिन्होंने उस स्थान पर तालाब, कुआ, मंदिर आदि बनवा रखा था और उनकी वहाँ एक धूनी भी चौबीस घण्टे जलती रहती थी। यदि कोई व्यक्ति धूनी से आग ले लेता तो महात्मा से दण्ड प्राप्त करता था। आस-पास के सभी लोग इनके भय से काँपते रहते थे। इधर श्री प्रभुजी की मण्डली के सभी व्यक्ति तो तम्बू आदि लगाने और स्थान बनाने में लग गये परन्तु हरिहरानन्दजी आसन बिछा, प्रभुजी को विराजमान कर उसी मंदिर के भीतर आग लेने चले गये। इनको कुछ मालूम नहीं था। इन्होंने जाते ही उस धूनी से आग लेली। तब उनके चेले ने कहा—अरे! यह तुमने क्या किया? हमारे गुरु जी शाप देकर तुम्हारे अंग-भंग कर देंगे।

इतने में महात्मा स्नान कर जल का लोटा लिये आ रहे थे। हरिहरानन्द के हाथ में आग देख क्रोधित हो उनकी ओर बढ़े। तब हरिहरानन्द ने उस महात्मा को कुपित हुए देख दौड़कर उनसे जल का लोटा छीनकर भूमि पर पटक दिया, साथ ही शाप देने की शक्ति भी हर ली और वहाँ से भाग चले। महात्मा भी चिल्लाते हुए उनके पीछे भागने लगे। हरिहरानन्द जी प्रभुजी के भय के कारण उस ओर न जाकर दूसरी ओर भाग निकले। उधर दोनों गाँवों के लोग भी इनके पीछे लग गये। तब हरिहरानन्द जी ने सोचा कि यह हमारा पीछा नहीं छोड़ता और हमारी ओर ही भागा आ रहा है। इधर श्री प्रभु जी हरिहरानन्द की प्रतीक्षा कर रहे थे। उधर श्री हरिहरानन्द जो दौड़कर श्री प्रभुजी के पास चले आये। श्री प्रभु जी ने पूछा इतनी देर तुमने कहाँ लगा दी? हरिहरानन्दजी ने चुप्पी ही साध ली। इतने में वह बूढ़ा महात्मा रोता-रोता श्री प्रभुजी के पास पहुँच गया। श्री प्रभु जी ने उससे पूछा क्या हुआ है? और तुम क्यों रोते हो? तब उस साधु ने कहा यह हमें लूट लाया है। इतने में

पीछे आगे आ रहे लोग भी वहाँ आ पहुंचे।

तब प्रभुजी ने उन लोगों से पूछा क्या बात है ? तो उन लोगों ने कहा हमें भी कुछ मालूम नहीं। उनमें से एक ने आगे बढ़कर श्री प्रभुजी से कहा यह महात्मा आपको शाप देकर मार देंगे नहीं तो जो यह कहते हैं इनका कहना मान लो। इस पर श्री प्रभुजी ने उससे पूछा यह शाप कैसे-कैसे देता है। वह बोला आपके बदले कौन मरे ?

श्री प्रभु जी ने कहा इस समय यह साधु कुछ नहीं कर सकता। यदि इसमें शाप देने की शक्ति होती तो यह इस प्रकार न रोता। यह बात सुनकर लोगों का भय दूर हो गया। तब वे लोग कहने लगे कितने ही आदमी इसने शाप देकर मार दिये। एक आदमी आगे आकर रोने लगा महाराज मेरा एक ही लड़का था जिसे इसने शाप देकर मार दिया। हमारा कुल जाता रहा। ऐसे ऐसे कितने ही समाचार मिले।

उपर्युक्त सब बातें सुनकर श्री प्रभुजी ने उस साधु को बहुत फटकारा और उसको वहाँ से चले जाने को कहा। परन्तु वह वहीं खड़ा रहा। लोग उसकी जटा पकड़ कर खींचने लगे। कोई लात मारे, कोई मुष्टिका। श्री प्रभु जी के मना करते-करते भी उन लोगों ने उस साधु को बहुत पीटा। अन्त में श्री प्रभुजी ने अपने शिष्यों से कहकर उस साधु को छुड़ा दिया और गाँव वालों को समझा बुझाकर भेज दिया।

जब इधरसेलोगों कोहटायातो घर लोग जाकर उसका माल लूटने लगे। यह समाचार पाते ही श्री प्रभुजी ने उसका सामान बचाने के लिये अपनी मण्डली के आदमियों को भेज दिया।

उन लोगों ने जाकर देखा कि महात्मा के चेलों को गाँव वाले पीट रहे हैं और धन लूट रहे हैं, तो उन लोगों ने जाकर उन चेलों को छुड़वाया। उनका सामान वापस दिलवा दिया और गांव वालों को समझाकर श्री प्रभुजी के चरणों में वापस आगये।

इस घटना को देखकर गाँव वालों में श्री प्रभुजी के प्रति इतनी श्रद्धा बढ़गई कि उन्होंने अपने यहाँ से दूध आटा घी आदि सब वस्तुएँ भेजनी शुरू कर दीं। श्री प्रभुजी ने वहाँ एक क्षेत्र खोल दिया। अनेक नर-नारी चारों ओर से श्रीप्रभुजी के दर्शन को आने लगे। एक दिन श्री प्रभुजी ने उस महात्माको अपने पास बुलाकर कहा—तुम अब अपने मंदिर में से चले जाओ। उस महात्मा ने कहा अब मैं बाहर निकलूंगा तो ये लोग मुझे मार डालेंगे तब श्री प्रभुजी ने पूछा यदि तुम्हें कुछ शक्तियाँ दे दी जायें तो क्या तुम चले जाओगे इतने में वहाँ खड़े सभी लोग प्रभु जी से प्रार्थना करने लगे—प्रभो ! ऐसा आप न कीजिए। श्री प्रभु जी ने उस महात्मा से पूछा—ये सिद्धियां तुमने कैसे प्राप्त कीं ? तब महात्मा ने कहा—आबू के पहाड़ पर जाकर मैंने यह सारे मन्त्र सिद्ध किये हैं। २७ महीने में मैंने भैरव की सिद्धि, १२ वर्ष में महाकाली आदि की सिद्धियाँ पाई हैं मेरी वर्षों की कमाई आपका

शिष्य मिनटों में छीन लाया है। अब कृपा-कर वह शक्ति मुझे वापस दिलवा दीजिए, जिससे मैं जीवित रह सकूं। श्री प्रभु जी ने कहा—इन सिद्धियों के दुरुपयोग से घोर नरक की यातनाओं को भोगना पड़ता है। अब तुम्हारा हित इसी में है कि तुम योग-मार्ग में लग जाओ। तब उस महात्मा ने कहा—अब ७० वर्ष की मेरी आयु हो गई है, इसलिये मुझे और कुछ नहीं सुहाता। तब वहाँ के सभी लोग श्री प्रभु जी से प्रार्थना करने लगे, आप कृपा कर सिद्धियाँ वापस न दीजिए और इस महात्मा को ऐसे ही रहने दीजिए। अन्त में श्री प्रभु जी ने दोनों ओर के व्यक्तियों को समझा कर आपस में समझौता करवा दिया। कुछ दिन ठहरने पर जब देखा कि लोग अब उस महात्मा से कुछ नहीं कहते हैं तो एक दिन वहाँ से चल दिये।

सद्गुरु-महिमा

[कु० बबली रानी]

सतगुरु के चरणों की धूल। शीश धरौं भव दुख निर्मूल ॥
सतगुरु शरण मिटे सब शूल। सतगुरु के गुण कभी न भूल ॥
सतगुरु से लीजे वह ज्ञान। जासे होय धारणा-ध्यान ॥
सतगुरु बिन न मिटे दुख भाई। करौ क्यों न कोटिक चतुराई ॥
वेद शास्त्र हू कहैं पुकार। सतगुरु करैं जगत सों पार ॥
सतगुरु बिना नहीं कल्यान। करो सदा सतगुरु का मान ॥
सतगुरु महिमा कबिरा गाई। गोरख कीनी बहुत बड़ाई ॥
सहजो ने यह बोले बोल। सतगुरु के गुण हैं अनमोल ॥

सब दुख भंजन सतगुरु,
पार उतारन हार।
सदा गहौ सतगुरु शरण,
बाल, वृद्ध, नर-नार ॥

वैर के बीज

[आचार्य्य-यशोवर्धन]

पृषत कुमार राजा द्रुपद जब बालक थे तब भरद्वाज मुनि के आश्रम में ही प्रायः खेला करते थे। अध्ययन भी उनका उसी आश्रम में हुआ करता था। इनके दूसरे बाल सखा थे मुनि भरद्वाज के पुत्र द्रोण जो आगे चलकर द्रोणाचार्य के नाम से विख्यात हुए।

× × ×

बालक द्रोण और बालक द्रुपद में समवयस्क होने के कारण और दिन रात एक ही आश्रम में रहने के कारण गहरी दोस्ती थी। इस गहरी दोस्ती का एक और कारण यह भी था कि इन दोनों के पिता भरद्वाज मुनि और राजा पृषत में भी गहरी मित्रता थी।

× × ×

कालान्तर में राजकुमार द्रुपद ने अपने पिता की मृत्यु के बाद अपना राज्य सम्हाला और बालक द्रोण ने अपने पिता की परम्परा के अनुसार वेद शास्त्रों के अध्ययन के साथ धनुर्वेद में विशेष योग्यता प्राप्त की। परशुराम को प्रसन्न करके उन्होंने उनके सभी अस्त्र-शस्त्र और उन सबके प्रयोग तथा उस संहार की विधि भी प्राप्त कर ली थी।

× × ×

एक दिन अपने मुनि वेष में द्रोणाचार्य घूमते-घूमते राजा द्रुपद के दरबार में जा पहुंचे। उन्हें यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि बचपन के अभिन्न साथी राजा द्रुपद ने उनकी ओर आंख उठाकर भी नहीं देखा, द्रोणाचार्य ने अपने को कुछ अपमानित-सा अनुभव किया। वे खड़े हुए और बोले—राजन्! क्या तुमने मुझे पहचाना नहीं मैं तुम्हारा बाल सखा द्रोण हूं।

× × ×

राजा द्रुपद के माथे पर, उनके मन में समाये हुए अहं और तिरस्कार की रेखायें और अधिक गहरी होकर उभर आईं। वे कड़ुवे-से स्वर में बोले—

नाश्रोत्रियः श्रोत्रियस्य नारथी रथिनः सखा।
नाराजा पार्थिवस्यापि सखि पूर्वं किमिष्यते॥

सिंहासन

गुल्फौ च वृषणस्याधः सविन्याः पार्श्वयोक्षिपेत्।
दक्षिणे सव्य गुल्फं च दक्ष गुल्फं तु सव्य के॥
हस्तौ तु जान्वोः संस्थाप्य स्वांगुली संप्रसार्य च।
व्यात्त वक्त्रो निरीक्षेत् नासाग्रं सु समाहितः॥
सिंहासनं भवेदेतत्पूजितं योगिपुङ्गवैः।
बन्धत्रयं संस्थानं कुरुते चासनोत्तमम्॥

विधिः—पहले सीधे समभाव से बैठकर अपने पैरों के दोनों गुल्फो को (अर्थात् टखने का) सीवनी के दायें और बायें लगायें दाहिने भाग में बायें टखने (एडी गांठ) को एवं बायें भाग में दाहिने टखने को लगायें इसके बाद दोनों की अंगुलियों को खूब फैलाकर दृढ़ता के साथ अपने दोनों घुटनों पर जमा कर रख उसके बाद सिंह के समान मुख फैलाकर लपलपाती हुई जीभ को निकाल कर भ्रूमध्य को देखो इसी का नाम सिंहासन है।

समयः—साधारण पूर्वोक्त नियमानुसार शनैः-शनैः अभ्यास को बढ़ावें ।

लाभः—इस आसन में सिद्ध के बल की धारणा करने से दिल की शक्ति बढ़ती है । जालन्धर बन्ध के फलस्वरूप मन की एकाग्रता स्वाभाविक है । उड्डियान बन्ध के फलस्वरूप जठराग्नि का बढ़ना, भूख अधिक लगना स्वाभाविक है । उसके साथ साथ पेट सम्बन्धी सभी प्रकार के वात रोगों का नाशक है । मूलबन्ध में अपान के ऊर्ध्वाकर्षण से और ऊपर से उड्डियान एवं जालन्धर बन्ध के लगने से प्राणापान गतिरोध न होकर कुण्डलनी का बोधक है । सब प्रकार से आरोग्यप्रद एवं शक्तिवर्धक है ।

प्राणासन

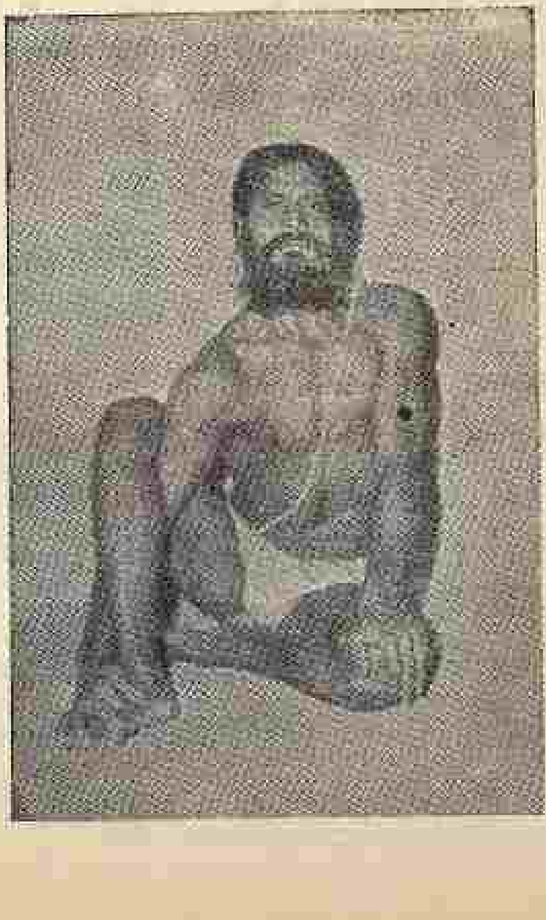

अर्थात् जो श्रोत्रिय नहीं है वह श्रोत्रिय का, जो रथी नहीं है वह रथी वीर का, और इसी प्रकार जो राजा नहीं है वह किसी राजा का मित्र होने योग्य नहीं है।

बुद्धिमान द्रोण राजा की यह वाणी सुनकर अवाक् रह गये। वे खिन्न और तिरस्कृत होकर राजा के दरबार से चुपचाप लौट आये। लेकिन उन्होंने अपने इस तिरस्कार का बदला लेने का निश्चय किया। अपनी योजना के अनुसार वे हस्तिनापुर पहुंचे जहां आचार्य्य भीष्म ने अपने सभी पौत्रों को धनुर्वेद तथा अन्य आयुधों की शिक्षा हेतु शिष्य रूप में उन्हें सौंप दिया।

जब सभी कुमारों को धनुर्वेद तथा अन्यान्य शस्त्रों की शिक्षा में पारंगत कर दिया तब उन्होंने शिष्यों से गुरु-दक्षिणा देने का आग्रह किया।

पाण्डु नंदन पाण्डवों ने वचन दिया कि वे गुरुदेव के चरणों में गुरु-दक्षिणा के रूप में वही वस्तु भेंट करेंगे जिसकी वे उन्हें आज्ञा करेंगे।

आचार्य्य द्रोण प्रसन्न हुए और बोले—

पार्षतो द्रुपदो नाम-
छत्र वत्यां नरेश्वरः।
तस्मादाकृष्य तद् राज्यं
मम शीघ्र प्रदीयताम्॥

अर्थात् अहिच्छत्रा नगरी में पृषत के पुत्र राजा द्रुपद रहते हैं उनसे उनका राज्य छीन कर शीघ्र मुझे अर्पित कर दो।

'तथास्तु' कहकर पाण्डु पुत्र धृतराष्ट्र के पुत्रों को भी साथ लेकर पाञ्चाल देशमें गये। और पाञ्चाल नरेश द्रुपद को युद्ध के लिए आमंत्रित किया। घनघोर युद्ध हुआ धृतराष्ट्र पुत्र और कर्ण आदि सभी महारथी युद्ध का मैदान छोड़कर भाग आये किन्तु पाण्डु-पुत्र अन्त तक जमे रहे। राजा द्रुपद परास्त हुए। बन्दी बनाकर आचार्य्य द्रोण के सामने लाये गये। द्रोण ने ब्राह्मणोचित क्षमा दान दिया लेकिन इस शर्तपर कि आधा राज तुम करोगे और तुम्हारा आधा राजा मेरे अधीन रहेगा।

द्रुपद ने यह शर्त मान तो ली लेकिन प्रति हिंसा की आग उनके मन से न बुझ सकी। द्रोण से बदला लेने के लिए उन्होंने वेदविद् मुनियों से यज्ञ के द्वारा ऐसे पुत्र को प्राप्त किया जो द्रोण के विनाश का कारण बना।

इस प्रकार द्रोण और द्रुपद के बीच में बैर के जो बीज पनपे थे महाभारत के युद्ध में वे भी सभ्यता और संस्कृति के विनाश के कारण बने।

इसीलिए योग-दर्शन के रचयिता महर्षि पतञ्जलि ने 'अहिंसा बैर त्यागः' कहकर बैर और ईर्षा के त्यागने का उपदेश दिया है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में भी भगवद्-प्राप्ति का लक्षण बतलाते हुए स्पष्ट कहा है—

निर्वैरः सर्व भूतेषु
यःस मामेति पाण्डव।

अर्थात् निर्बैर होकर ही प्रभु से प्रभु के भक्तका मिलन होता है। अतः प्रत्येक मनुष्य का धर्म है कि वह अपने हृदय में ईर्षा और बैर-विरोध के बीजों को न पनपने दे।

सचित्र योगासन और उनसे लाभ

वज्रासन

जङ्घाभ्या वज्रवत्कृत्वा गुदपार्श्वपदावुभौ ।
वज्रासनं भवेदेतद्योगिनां सिद्धि दायकम् ॥

विधिः—दोनों जंघाओं को वज्रवत् दृढ़ करके दोनों पैरोंको गुदा के पार्श्व भाग में जमा कर सीधा बैठ जाय, इसी को वज्रासन कहते हैं। कदाचित् यही इस आसन को किये हुए ही पीछे को लेट जायं एवं छाती को दृढ़ता के साथ ऊपर को निकाल लें। दोनों हाथों को मिलाकर (अंगुलियों में अंगुलियां डालकर) छाती पर रख लें या पिछली ओर सिर के नीचे जमाकर रख लें तो इसी को प्रसुप्त वज्रासन कहते हैं।

लाभः—यह आसन शरीर में दृढ़ता देता है। दोनों जंघा छाती व उदर विकारों का नाशक है।

उद्बोधन

रे मन जन्म पदारथ जात ।
बिछुरे मिलन बहुरि कब ह्वैहै ज्यों तरुवर के पात ॥
सन्निपात कफ कंठ विरोधी रसना टूटी जात ।
प्रान लिये जम जात मूढ़मति देखत जननी तात ॥
छिन इक माँहि कोटि जुग बीतत फेरि नरककी बात ।
यह जग प्रीति सुआ सेमरकी चाखत ही उड़ि जात ॥
जमके फंद नहीं पड़ु बौरे चरनन चित्त लगात ।
कहत सूर बिरथा यह देही अन्तर क्यों इतरात ॥

—भक्त सूरदास

विधि:—सीधे बैठ जाइये अपने एक पैर को दूसरे पैर को दूसरे पैर की जंघा पर (पद्मासन की तरह) रख लीजिये दूसरे पैर के पावतल को जमीन में रख कर घुटना उठाये रखें जिस ओर का घुटना उठा है उसी ओर के हाथ को उसी पैर के जंघा व पिण्डली के बीच से निकाल कर हाथ के पंजे को पावतल के पास ही जमीन में जमा दीजिये, इसके बाद जो पैर जंघा पर रखा गया है उसी पैर की तरफ के हाथ को उसी पैर के घुटने पर जमा दें। इसी का नाम प्राणासन है।

फल:—इस आसन के करने में दोनों भुजदण्ड, हाथों का सन्धि-भाग अंगुलियें पावतल और घुटने सभी पर पूरा-पूरा तनाव पड़ता है। अत: इन सभी अंगों के लिए दृढ़ता जनक है। आसनों की प्रक्रिया में ये सब आसन बहुत सरल से मालूम होते हैं किन्तु इनका प्रभाव भिन्न-भिन्न अंगों पर पड़ने के कारण आसन ही पूर्ण आरोग्यता प्रदान कर सकते हैं।

संयम का बल

ज्यों-ज्यों मनुष्य संयम द्वारा, इन्द्रिय वासना, सांसारिक इच्छा तथा क्षुद्र वृत्ति पर विजय एवं तपस्या द्वारा पूर्व संचित कर्मों का विनाश करता जावेगा, त्यों-त्यों उसका आत्मा शुद्ध एवं उज्ज्वल होता जावेगा। जब वह समस्त कर्म-जाल को नष्ट करके शुद्ध हो जावेगा, उसके दिव्य ज्ञान में समस्त लोक के पदार्थ अलौकिक होने लगेंगे तो वह पवित्र मोक्ष स्थान में पहुँच कर, अनन्त काल तक, अनुपम अलौकिक आनन्द में मग्न रहेगा।

उत्तर-प्रदेश प्रशासन के पंचायत राज-विभाग द्वारा :—

सिद्धयोग को मान्यता

उत्तर प्रदेश के पंचायत राज प्रशासन द्वारा 'सिद्धयोग' समस्त पंचायतों की पाठशालाओं व पुस्तकालयों के लिए उपयोगी समझकर स्वीकृत किया गया है। निदेशक पंचायत राज ने अपने एक परिपत्र द्वारा समस्त जिला पंचायत राज अधिकारियों को परामर्श दिया है कि वे 'सिद्धयोग' को अपनी अधीनस्थ पाठशालाओं वाचनालयों व पुस्तकालयों के लिए लेकर—लोक जीवन के नैतिक स्तर मनोबल को बढ़ाने में सहायक बनें।

प्रशासन द्वारा जारी किये गये परिपत्र की अविकल नकल इस प्रकार है :—

प्रेषक :—

निदेशक पंचायत राज,
उत्तर-प्रदेश।

सेवा में,

समस्त जिला पंचायत राज अधिकारी,
उत्तर-प्रदेश

संख्या: २ । का०, १७६ । ७०-२ । ६७ । ६२
लखनऊ, दिनांक जुलाई १ १९७०

विषय : **सिद्धयोग-पत्रिका**

महोदय,

उपर्युक्त विषय के प्रसंग में सूचित करना है कि श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन बर्वाई, एत्मादपुर, जिला, आगरा द्वारा प्रकाशित पत्रिका **'सिद्धयोग'** पंचायतों के लिए उपयोगी पत्रिका है। इसमें यौगिक क्रियाओं की सरल चर्चा होती है जो ग्रामीण जनस्वास्थ्य एवं लोक-जीवन के नैतिक स्तर तथा उनके मनोबल को सबल बनाने में बड़ी सहायक हो सकती है।

आपसे अनुरोध है कि उक्त पत्रिका के विषय में गाँव पंचायतों को भली प्रकार से सूचित कर दें और निर्देश दे दें कि जिन पंचायतों के पास अपने पुस्तकालय, वाचनालय व पाठशाला आदि हैं वे अवश्य ही अपनी-अपनी संस्थाओं में इस पत्रिका को सुविधानुसार मँगा कर अपनी क्षेत्रीय जनता को अवश्य लाभान्वित करें और उपयोगी यौगिक क्रियाओं को लोकप्रिय बनाने का प्रयत्न करें।

पत्रिका का वार्षिक चन्दा १० रु० तथा एक अङ्क का मूल्य १ रु० और इसके मंगाने का पता यथा उपर्युक्त (प्रस्तर-१) है।

भवदीय,

हस्ताक्षर (गिरधर गोपाल)
निदेशक, पंचायत राज, उत्तर-प्रदेश

अज्ञान और अज्ञानी

योग के सिद्धान्त और शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

संस्थापक संपादक तथा संरक्षक:
योगिराज अनंत श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

यदि वास्तविक दृष्टि से देखा जाय तो जब मनुष्य की समझ में ज्ञान का स्वरूप अच्छी तरह आ जाता है तब सहज में ही यह बात उसकी समझ में आ जाती है कि अज्ञान किसे कहते हैं क्योंकि जो ज्ञान नहीं है वह अपने आप अज्ञान सिद्ध हो जाता है।

× × ×

जो केवल महत्त्व या प्रतिष्ठा पाने के लिए ही जीता है, जो केवल मान की प्रतीक्षा करता रहता है और आदर-सत्कार होने से ही जिसका सन्तोष होता है, जो पर्वत के शिखर की भाँति सदा ऊपर ही रहना चाहता है और अपने उच्च पद से कभी नीचे नहीं उतरना चाहता, उसके सम्बन्ध में समझ लेना चाहिए कि उसमें अज्ञान की ही अभिवृद्धि है।

× × ×

जिस प्रकार लोग रस्सी में पीपल के पत्ते बाँध कर तोरण बनाते हैं उसी प्रकार जो अपने दान आदि पुण्य कर्मों का तोरण बड़े-बड़े शब्दों से प्रस्तुत करके टाँगता है। आडम्बर पूर्ण शब्दों में अपने पुण्य कर्मों की घोषणा करता रहता है, जो जान-बूझकर मन्दिर की झँझरी की भाँति सदा सिर उठाये खड़ा ही रहता है, जो अपनी विद्या का विस्तृत वर्णन करता रहता है, अपने पुण्य कर्मों का ढिंढोरा पीटता रहता है और प्रत्येक कार्य केवल लौकिक कीर्ति प्राप्त करने के ही उद्देश्य से करता है, उसे अज्ञान की खान ही समझिए।

—सन्त ज्ञानेश्वर

मुद्रक—देवीप्रसाद शर्मा 'विश्व' कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, कसाई मार्ग, ताजगंज-आगरा-१